३१ जुलाई, १९७२

# आरम्भ

दिल्ली से पत्र
असगर वजाहत का

प्रिय भाई,

आपकी पत्रिका और पत्र मिला बहुत बहुत धन्यवाद पत्रिका पूरी पढ़ डाली. सम्पादकीय और उसके बाद का लेख काफी पसंद आया कहानी अच्छा प्रयास लगी. और विजेन्द्र की कविता काफी परिचित मालूम हुई इस कारण पसंद नहीं आ सकी कुछ यह भी बात थी कि वेणु गोपाल ने पिछले दिनों मुझसे कहा था कि विजेन्द्र उसका प्रिय कवि है, तो वेणु गोपाल के प्रिय कवि से कुछ और मतलब सुनने की आशा रखता हूँ

भाईजान ! मैं लेख आदि लिखने से घबराने लगा हूँ कुछ समझ में नहीं आता कि किस प्रकार क्या लिखा जाये और उसे कैसे 'जिया' जाये. किस तरह अपने चारों ओर की परिस्थितियों को केवल लिखकर संतोष कर लिया जाये. मैंने यदि कोई कहानी लिखी तो अवश्य भेज दूंगा. इधर एक लम्बी कहानी पूरी की है पर उसे 'वाम' में भेजने का इरादा है आपने जो विषय लिये हैं वे काफी अच्छे हैं. मैंने उन पर सोचा और कुछ एक विचार जो बहुत दिन से मुझे परेशान कर रहा है आपको लिखना चाहता हूँ. यदि मुनासिब समझें तो किसी से उन पर कुछ लिखवा सकते हैं. अपनी प्रिय चीजों की आलोचना करने के सिलसिले में मैंने वामपंथी राजनीति को (यहां बात यह साफ कर दूं कि मैं CPM को अब तक सबसे उचित मार्क्सवादी दल समझता हूँ) कई कोणों से देखने लगा हूँ. मिसाल के लिए वामपंथी दलों में सर्वहारा वर्ग से कोई बड़ा नेता उभर कर क्यों नहीं आता ? सत्ता (सरकार) वामपंथी दलों को दक्षिणपंथीवादी बनाने के जो प्रयत्न कर रही है उसके बारे में इन दलों के पास क्या जानकारी है ? प्रकाशन और मजदूर के सम्बन्ध में बहुतेरे

( उसे निरर्थक मानते हुए ) करते रहने के लिये कौन सा रास्ता अपनाया जाय कि आन्दोलन एक ओर तो जनता से न कटने पाये और दूसरी ओर उसकी क्रांतिकारिता बनी रहे.

स्थानीय यूनिटों का अध्ययन करने के बाद क्या कुछ ऐसा पता नहीं चलता कि लीडरशिप अब भी मध्यमवर्ग के हाथ में है जिसकी अपनी बहुत सीमाएं हैं ? और कहीं-कहीं तो ऐसा सुनने में आया है कि मध्यमवर्ग के पेशेवर क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग को लीडरशिप तक पहुंच पाने से रोकते हैं. इन सब बातों को लेकर विचार करना हमारे हित में है. मैं नक्सलवाद को अब तक नहीं समझ पाया हूँ तो ऊपर लिखे प्रश्न भी मेरी समझ से बाहर हैं. इस दिशा में कुछ करना आवश्यक है।

—असगर

---

प्रिय साथी,

आपका पत्र 'धुप' पर बेचैन दस्तक देता है जिसे महज देखना-सुनना ही नहीं समझना भी हमारे आज की आवश्यकता है. और आपके सवालों के आगे-पीछे पचीस वर्षीय जनतंत्र से बनी परिस्थितियों के संघात से संवेदित 'वामपंथी समझ' का हर ईमानदार आदमी इन्हीं सवालिया-मुद्राओं में खड़ा है. उत्तर प्राप्त करने की उसकी आकुलता और ऊब आवेश की ऊँचाइयां छू लेने को उफनती हैं पर फिसल जाती है. प्रयत्नों से होती थकन, 'क्या करें' का प्रश्न और 'कुछ भी न कर पाने' की विवशता में उसका आवेश उसकी ऊब बस धुआं-धुआं कर ठण्डा हो जाती है.

यह तो सही है कि आपके यानि 'वामपंथी समझ' वाले हर संवेदनशील आदमी के ये सवाल अब तक के वामपंथी आन्दोलन के परिणामों को खंगालते हुए वाम राजनैतिक नेतृत्व के सामने फैलना चाहते हैं. यहां स्पष्ट करना उचित होगा कि वाम आन्दोलन की यात्रा में आई दरार और ठहराव के बाद आज की स्थितियों में सी॰ पी॰ एम॰ ही एक ऐसा दल है जो सही वाम विकल्प को स्पष्ट करने में सर्वाधिक सक्षम और समर्थ है. ऊपर के सवाल वाम राजनैतिक कार्यक्रम के रूपाकारों के सामने फैलें, मैं भी एक सवाल जोड़ देना चाहता हूं और वह यह कि—

'वामपंथी समझ' के आदमी-रचनाकार और जागरूक का वामपथ की राजनीति से कैसा और कितना लगाव रहा है ? मध्यवित्त की बुर्जुआ आदतों व संस्कारों के प्रभाव से मुझे और किसी सीमा तक आपको भी यह स्वीकारने मे कठिनाई हो पर यह एक बड़ी सच्चाई है कि 'वाम समझ' का बहुत बड़ा तबका लम्बे समय से सीधी राजनीति से अपने को तटस्थ बनाए हुए है. वह कोई 'इंट्यूशन' प्राप्त करने के मोह मे 'अकेले चिन्तन' में खोया है, वह शायद गुस्सैल कविता-कहानी लिखकर ही अपने दायित्व की पूर्ति मानता है या फिर गरम-गरम बहसो से ही बदलाव के बरस जाने की प्रतीक्षा मे अनजाने ही अपनी ऊब और आवेश को ठण्डा होने दे रहा है.

आप जानते हैं, स्वतंत्रता के पहले दिन से अब तक आवेश और ऊब की कविताएं कहानियां और रंग न तो जो जा रही यंत्रणाओं को नंगा कर पाई हैं और न ही जन मानस पर अपना कोई प्रभाव रख पाई हैं 'आम आदमी' के नाम पर चर्चित शब्दों, रंगों को आम आदमी हो नहीं अपना सका है फिर इनमे वह अपना चेहरा पहचान ले-यह तो और भी दूर की बात है इसका परिणाम यह कि —

वाम विचारों के हरावल की इन आदतो का लाभ उठाने में माहिर हो गया 'लोकतन्त्र', हर पांचवें वर्ष गुम्बदो में जा बैठता है. ऊपर से झांक कर बिना हिचक सीढ़ियां हटा लेने के इशारे कर देता है ताकि वैधानिक मर्यादाओं मे उसकी जुगाली मे बाहरी सामान्य का दखल न होने पाए. साक्षी हैं-आप हम कि चौथाई शताब्दी मे ही कितना खूबसूरत बना दिया गया है 'प्रजनाओं' (प्र-जनना) का लोकराज्य ? इसकी रक्षा मे एक ओर गोरी हुकूमत के स्वाद की याद मे दांत बजाती देशी सेविल सर्वो अफसरशाही हर घड़ी मुस्तैद रहती है तो दूसरी ओर स्वदेश-याभी के इस्तआमात में लगा दस-बीस करोड़पतियों का समस्त पांच साला योजनाओं मे से दस-बीस आधे करोड़पति और उठा कर अपना ही कुनबा बढ़ाता रहता है. इस 'नीति' से देश को 'सम्पन्न' बनाया जा रहा है ताकि उत्पादन और सम्पत्ति के एकाधिकार को विकेन्द्रित करने के ये प्रयत्न आंखें फाड़े खड़ी भीड़ की किरकिरी न बनें.

( उसे निरर्थक मानते हुए ) करते रहने के ि
कि आन्दोलन एक ओर तो जनता से न र
क्रांतिकारिता बनी रहे.

स्थानीय यूनिटों का अध्ययन करने के बाद
लीडरशिप अब भी मध्यमवर्ग के हाथ में है
कहीं-कहीं तो ऐसा सुनने में आया है कि म
वर्ग को लीडरशिप तक पहुंच पाने से रो
करना हमारे हित में है. मैं नक्सलवाद क
लिये प्रश्न भी मेरी समझ से बाहर हैं. ?

———

प्रिय साथी,

आपका पत्र 'चुप' पर बेचैन दस्तक
ही नहीं समझता भी हमारे आज
सवालों के आगे-पीछे पचीस वर्षीय
संघात से संवेदित 'वामपंथी समझ
सवालिया-मुद्राओं में खड़ा है उ
और ऊब आवेश की ऊँचाइयां
जाती है. प्रयत्नों से होती
'कुछ भी न कर पाने' की विव
धुआँ-धुआँ कर ठण्डा हो जाती

यह तो सही है कि आ
संवेदनशील आदमी के ये
परिणामों को खंगालते हु
चाहते हैं. यहां स्पष्ट क
यात्रा में आई दरार औ
सी० पी० एम० ही ए
स्पष्ट करने में सर्वाधि
जानी

अपनी 'सुविधाओं-प्रसादों' को ही नहीं 'स्व' के मोह को भी तोड़ना पड़ता है.

आप यह स्वीकारने को तैयार नहीं होंगे कि 'समझ' वाला तबका यह नहीं जानता कि उसीके मसीहाना-अन्दाज़ के ठीक नीचे स्थिति को यथावत बनाए रखने मे ही प्रयत्नशील इस लोकतंत्र ने अर्थहीन राष्ट्रीयता, सत्ता की रक्षा के लिए जातीयता-धर्मीयता और पांचवें साल के एक दिन विधाता के पुर्ज़े के झोंके रखकर आम आदमी को जीवन की मूल और अहम् समस्याओं से दूर ही किया है. फिर यह प्रश्न उठता है कि यह तबका जिसमे मास्टर-मसीजीवी किंवा बौद्धिक नेतृत्व भी शामिल है; बदलाव के लिये कौन-सी भूमिका अदा कर या रहा है ?

आम आदमी तक असम्प्रेषित आवेश और ऊब के शब्द न तो बदलाव की उनकी तीव्रता सिद्ध करते हैं और न ही उनकी कोई भूमिका, बहरहाल यदि इसे ठहराव मान लिया जाए तो भी नया प्रारम्भ उनके अपने विकल्प के कार्यक्रम से सीधे जुड़ाव से ही हो सकता है कार्यक्रम के साथ आम आदमी की दैनदिन स्थिति उसकी भावना उसकी पीड़ा और उसकी लड़ाई से अलग कोई कविता-कहानी या बहस बढ़ाने भर की कोई किताब कोई सकारात्मक अर्थ हो सकता है कम से कम मुझे-आपको भी स्वीकारने मे कठिनाई होगी

अलगाव और ठहराव के बावजूद लगभग चालीस वर्षों के वामपंथी आन्दोलन के अब तक के परिणामो की रोशनी मे ऊपर के शब्दों का यह भावार्थ कतई नहीं है कि वाम राजनैतिक-नेतृत्व पूरी तरह निर्दोष रहा है या यह कि राजनैतिक कार्यक्रम परिवेश की ज़रूरतों और तकाज़ो के अनुसार ही सम्पादित होता रहा है

मैं कहना चाहता हूं कि सर्वहारा के गणतंत्र का विकल्प अर्थात् वर्तमान व्यवस्था के समानान्तर पूर्ण जीवन विधि को आम आदमी के अन्तर तक नहीं पहुंचाया गया, वह इससे अपना भावात्मक लगाव स्थापित नहीं कर पाया. महानगरों मे औद्योगिक मोर्चों पर ही नहीं गांव कस्बे के सभी छोटे मोर्चों पर एक ही प्रकार की सजगता और कार्यक्रम का निरूपण होता तो इस तरह के 'आज' के आने-आने क्रान्ति की सम्भावना अधिक स्पष्ट हुई होती !

वातायन, दिसम्बर '७२ [७]

आप मेरे साथ होंगे कि सर्वोदयी समाजवाद मार्का यह लोकतंत्र आम आदमी के नाम पर चौथाई शताब्दी जी गया है—देश के मजदूर, किसान और निम्न मध्यवित्त-जीवी को जीने का कोई भी ठोस आधार दिए बिना यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि मुट्ठीभर लोगों के नियंत्रित लोकतांत्रिक अर्थ-तंत्र ने उत्पादन और श्रम के सही हकदारों के विशाल समूह पर अपना शिकंजा पहले से अधिक कस लिया है

स्वाभाविक ही है कि विकास के ऐसे प्रयत्नों से बन गया इतना बड़ा फर्क संवेदन और समझ-समझ वाले आदमी से हजम न हो और वह अपने तेवर बदल ले, बदले भी मगर ये तेवर आवेश का क्रान्तिधर्मी आकार लेने से पूर्व ही ठंडे हो गए हैं या फिर उनकी दिशा ही बदल गई है. और जो सामने आता है-वह महज दिमागी दुनिया की चिंता होती है जिसमें से कभी मध्यवित्ती संस्कार झांकते हैं तो कभी पूंजीवादी आदतें तो कभी भारतीय पुरातनता के मोह और दिखती है बल खा-खा कर लिपटी पश्चिमी आधुनिकता की चमक.

इतिहास ही नहीं आप हम सभी साक्षी हैं इस तथ्य के कि 'समझ' वाला तबका ही हरावल होता है—यथावत के सामने विकल्प के बदलाव का अर्थात् जीवन-विधि के आमूल परिवर्तन लाने की एषणा का. इन्हीं के शब्दों-रंगों से सारा परिवेश जीने को दी जा रही विषमताएं, अपनी विवशताएं, अपनी पीड़ा और अपना सही चेहरा पहचानता है. इन्हीं की बनाई जमीन पर खड़ा होकर बदलाव की लड़ाई लड़ता है. बहुसी-भाषणों-शब्दों-रंगों से यह सब कितना हो पाया है, इसका खुलासा भी हमारे सामने है; बदलाव का हरावल दस्ता इस गुर से भलीभांति परिचित है कि वर्तमान लोकतंत्र व्यक्ति, राज्य और तंत्र के साथ विरोध को भी अपनी सुविधा और स्थायित्व के लिये यथावत रखने में अधिक सजग है, फिर भी यह दस्ता अपने को इस जुए से मुक्त करने की हरकतें नहीं कर पाता. कहा जा सकता है-ऐसा न करने के पीछे उसे अपनी 'सुरक्षा' की चिंता है, वह अभी जिन 'सुविधाओं' और 'बचावों' के सहारे जीने के साथ अपना 'स्थान' भी बनाए हुए है. उस पर खतरा आ सकता है, 'खतरा' जो लेने की आदत वह नहीं डालना चाहता-क्योंकि उसे

अपनी 'सुविधाओं-प्रसादों' को ही नहीं 'स्व' के मोह को भी तोड़ना पड़ता है.

आप यह स्वीकारने को तैयार नहीं होंगे कि 'समझ' वाला तबका यह नहीं जानता कि उसीके मसीहाना-अन्दाज के ठीक नीचे स्थिति को यथावत बनाए रखने में ही प्रयत्नशील इस लोकतंत्र ने अर्थहीन राष्ट्रीयता, सत्ता की रक्षा के लिए जातीयता-धर्मीयता और पांचवें साल के एक दिन विधाता के पुर्जे के धोके रखकर आम आदमी को जीवन की मूल और अहम् समस्याओं से दूर ही किया है. फिर यह प्रश्न उठता है कि यह तबका जिसमें मास्टर-मसीजीवी किंवा बौद्धिक नेतृत्व भी शामिल है; बदलाव के लिये कौन-सी भूमिका अदा कर पा रहा है ?

आम आदमी तक असम्प्रेषित आवेश और ऊब के शब्द न तो बदलाव की उनकी तीव्रता सिद्ध करते हैं और न ही उनकी कोई भूमिका. बहरहाल यदि इसे ठहराव मान लिया जाए तो भी नया प्रारम्भ उनके अपने विकल्प के कार्यक्रम से सीधे जुड़ाव से ही हो सकता है कार्यक्रम के साथ आम आदमी की दैनंदिन स्थिति उसकी भावना उसकी पीड़ा और उसकी लड़ाई से अलग कोई कविता-कहानी या बहस बढ़ाने भर की कोई किताब कोई सकारात्मक अर्थ हो सकता है कम से कम मुझे-आपको भी स्वीकारने में कठिनाई होगी

अलगाव और ठहराव के बावजूद लगभग चालीस वर्षों के वामपंथी आन्दोलन के अब तक के परिणामों की रोशनी में ऊपर के शब्दों का यह भावार्थ कत्तई नहीं है' कि वाम राजनैतिक-नेतृत्व पूरी तरह निर्दोष रहा है या यह कि राजनैतिक कार्यक्रम परिवेश की धड़कनों और तकाज़ों के अनुसार ही सम्पादित होता रहा है

मैं कहना चाहता हूं कि सर्वहारा के गणतंत्र का विकल्प अर्थात् वर्तमान व्यवस्था के समानान्तर पूर्ण जीवन विधि को आम आदमी के अन्तर तक नहीं पहुंचाया गया, वह इससे अपना भावात्मक लगाव स्थापित नहीं कर पाया. महानगरों में औद्योगिक मोर्चे पर ही नहीं गांव कस्बे के सभी पक्षों मोर्चों पर एक ही प्रकार की सजगता और कार्यक्रम का निरूपण होता तो इस तरह के 'आज' के आते-आते क्रान्ति की सम्भावना अधिक स्पष्ट हुई होती !

आप जानते हैं कि आम आदमी के जैवी-स्तर में उसके सामने की विषमताओं और विवशताओं में कोई अन्तर नहीं आया है और अहम् समस्याओं पर आम के उखड़ाव को रोकने के लिए 'गरीबी हटाओ' 'समाजवाद लाओ' के नाम पर नेहरु काल से भी अधिक चतुराई से 'स्थिरता' देने के यत्न किए जा रहे हैं. भाईजान ! यह समय है कि "ऐसी स्थितियों में ऐसा हो नेतृत्व" या फिर "इससे अधिक कैसे सम्भव" की इतिहास की दुहाई दे दिया करता वाम राजनैतिक नेतृत्व ही नहीं 'वाम समझ' का हर आदमी अपने 'बचाव' के मध्यवित्ती बुर्जुआ संस्कार तोड़े-निस्संग नेतृत्व का विकास करे और मजदूर मोर्चे पर नहीं किसान-कला-साहित्य-संस्कृति के मोर्चों पर एक ही कार्यक्रम को अंजाम दे और मसीजीवी भी अकेले चिंतक की टेबल से उतर कर ज्यां पाल सार्त्र की तरह आवश्यकताओं के आन्दोलन का अगुआ या फिर कतार बने.

यह आप भी मानेंगे कि राजनीति और साहित्य मजदूर-किसान-आन्दोलन और कलाएं जीवन से अलग इकाइयां नहीं वरन् जीवन के विराट का ही अंग हैं. इन्हें जैवी आवश्यकताओं-अनिवार्यताओं के रुप में एक साथ और एक दृष्टि से देखने में ही वामपंथ के कार्यक्रम की सार्थकता है. रूसी और चीनी क्रान्तियों के समय के राज्यतंत्र की शक्ति और स्वरूप में आज की तुलना में बहुत बदला हुआ है और इसे बदलने में वाम विकल्प को अपने कार्यक्रम अपनी प्रणाली बदलाव लाना पड़ेगा. वैज्ञानिक विकास ने व्यक्ति की क्षमता के नये आयाम उजागर करते हुए जहां अनेकानेक सुविधाएं दी हैं वहां अनेकों भरम और उलझनें भी पैदा की हैं. मेरे विचार से इन सारे सन्दर्भों को सामने रखते हुए ठहराव को तोड़ने का आरम्भ 'वाम समझ' को 'राजनैतिक समझ-साहित्यिक समझ' या 'तकनीकी समझ' के खांचों से निकाल कर एक पूर्ण समझ का चिंतन देने और उसे जीने से ही हो सकता है

बहुत सम्भव है मैं अब तक की वाम-पंथी यात्रा को, ठहराव को और कलाओं में व्यक्त आवेग को और आपके सवालों को न समझ सका हूं; स्पष्ट होने और किसी न किसी माध्यम से क्रियाशील बनने की मेरी जिज्ञासा को आपके शब्द उत्तर देंगे.

—हरीश भादाणी

# बहिर्गमन

ज्ञानरंजन

कस्बे के अन्दर सर्वथा निश्चित कुछ दौरे से कार्यक्रम थे. इनमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता था. रोज़ आराम के साथ सुबह होती थी और उतने ही आराम से दिन का पटाक्षेप होता था. कुछ छोटी-छोटी दिलचस्प बातें थीं और कुछ दुर्लभ लोग भी लेकिन उनका विकास के साथ नाता नहीं रह गया था. इसलिये हमें अपना प्रदेश बीमार, पिछड़ा हुआ और वास्तविक दुनियां से भिन्न लगने लगा. यह वास्तविक दुनिया क्या है, इसकी कुछ बिखरी हुई अफवाहें हमारे पास बाहर से आया करती थीं. अधिकांश लोग अपनी रोज़मर्रा जिन्दगी में खोये हुए से चुपचाप और शान्त चल रहे थे. उन्हें अफवाहों से सरोकार नहीं था और न उनसे किसी प्रकार का विचलन

कस्बे में मनोहर सबसे अधिक परेशान, बेचैन और उत्पीड़ित युवक था. वह ख्वाबों में डूबा रहता. ख्वाबों ने उसे तमाम लोगों के लिए बेहद अटपटा बना दिया था. मनोहर के लहू में बेकरारी थी. कस्बा निहायत सर्द था मक्खियां धूल उड़ाती गाड़ियां और विश्राम करते हुए लोगों का साम्राज्य चारों तरफ फैला था. लोगों ने मृत्यु पर अपने तरीके से विजय प्राप्त कर ली थी. मनोहर लोगों से जबरदस्ती भिड़ जाता जबकि लोग लड़ना नहीं जानते थे. वे केवल दुनिया समझे हुये क्षमाशील लोग थे. वह कहता बाहर निकलो, वहां एक अग्रगामी संसार है. लोग मूड़ हिलाकर हां कहते और हुक्का गुड़गुड़ाने लगते

अधिक से अधिक यह होता कि लोग उसकी भाषा को विस्मयपूर्वक सुनते थे. उसे पता भी चल गया था कि उसकी भाषा को केवल सुना जा रहा है. इतना मनोहर को बदहवास कर देने के लिए काफी था. वह वातावरण को झनझनाहट से भर देता था. फिर अपने कमरे में बन्द एक पराजित निद्रा में गुम हो जाता. चरम किस्म के लोग मनोहर के साथ बुद्धिमत्ता का

मजबूरियो मे उजड़ जाने जैसा भी नहीं था. वह गुमनाम लोभ से पराभूत, अज्ञात दुनि
के प्रति चमत्कृत एक बेबुनियाद भागमभाग थी. हद तो यह थी कि वह अपनी जगह
लौटकर थूकने तक को तैयार नहीं था. उसकी भाषा का यह विच्छूपन लोगों के निम
को जलाने के लिए फेंका जाता था लेकिन लोगों को अपने चक्रव्यूह के अलावा कि
प्रकार की भी फ़ुरसत नहीं थी. मैंने अपने को डंक से बचाने की कोशिश की.

मनोहर का कहना था, वह जीने के लिए प्रदेशों और लोगों की तलाश करने के लि
बेकाबू हो चुका है, कस्बे मे रोमांच मुर्दा हो गया है. यह एक नितांत मनोरंजक घोष
थी जबकि सच्चाई यह थी कि उसने मूलत जीने से ही इनकार कर दिया

मेरी माँ ने, घर के नाऊ ने पुराने मास्टर साहब ने पंडित महाशय और पोस्ट मास
जी ने यहाँ तक कि उस ड्राइवर ने भी जो अपनी बस मे बैठाकर मनोहर को एक दि
कस्बे के बाहर छोड़ आया था बारम्बार मुझसे यही कहा छोड़ो भईया अपना काम क
सीधी राह चलो, दुनिया ऐसी ही है. इस भुरभुरे तरीके से रहोगे तो जवानी के अ
पर केवल पछतावा ही हाथ आयेगा. बेहतर है पैसा जोड़कर एक साइकिल ले लो औ
मौका लगे तो जमीन का एक टुकड़ा.
लोग बेहद शरीफ थे. वे जो कुछ भी कह रहे थे वह बरसते हुए प्यार जैसा था
गुस्से का अनुभव हुआ पर मैंने गुस्सा नहीं किया. फिर मैं अपना काम तो कर ही र
था मैं मनोहर की गर्दन घोटने का इरादा नहीं रखता था मैं उसे लगी भी नहीं म
रहा था. मैं उसमे कभी नहीं उलझा. मुझे केवल आदमी और समाज का तालमे
समझना था मैं नौकरी की अर्जियाँ भेजता रहा और पढ़ता रहा. मैंने लोगों का दि
नहीं दुखाया लेकिन अन्दर-अन्दर में माना नहीं, अपने ही मार्ग पर चलता रहा. लोगों
पता नहीं था कि मेरे अन्दर किस किस्म का आदमी बन रहा है मैं विद्रोही नहीं थ
मेरा मार्ग नितांत सड़ियल, भाग्यशून्य और आम था. मैंने अपने मामूली जीवन को
केवल चौकन्नी पहरेदारी के अन्दर जिलाये रखने की ही तमन्ना की थी.

हमारे कस्बे के साधारण लोग भयानक रूप से जूझने के बाद भी मधुर थे. माताएं अप
दसवीं संतान को इस ताव के साथ प्यार करती थीं कि लगता, उनका पहला बच्चा है
इन प्यारे और भोंदू लोगों को यह नहीं पता था कि अभिनेता का चक्कर जान ले
अनुसंधान की तरह एक आश्चर्यजनक और आह्लादपूर्ण हृदय है. मैं एक पुख्ता आद
बनने की अभिलाषा लेकर पिछले पच्चीस वर्षों से कछुआ बना हुआ हूँ. इस बीच अप
जगह को छोड़कर अनगिनत लोग चले गये. इनमे से कितने ही वे लोग थे जिन्हें दुनि
की रफ्तार ने तबाह कर दिया और फिर शहर चले जाने के अलावा उनके पास दू
कोई भी रास्ता नहीं था..
अनिवार्य लोगों का यह अनुभव ( जी हाँ अनुभव क्योंकि निर्णय करने के लिये किसी

सामाजिक-राजनीतिक दर्शन से पूरी सहायता से बचने में वे असमर्थ हैं ) है कि मैं जैसे तैसे पच्चीस वर्ष पहले की ही स्थिति में पड़ा हुआ हूँ. मैं हिल नहीं रहा हूँ और मुझे अपनी उदासी भरी दुनिया से मोह है.

वास्तव में हमारे बहुत से साथियों में तमाशा जाकर भी न दिलमिल होने की अद्भुत खूबी थी. वे कदम मिलाने के लिए बौखलाये हुए दौड़े चले जा रहे थे. इसलिये यह मान लेना मूर्खता होगी कि अपने समय के सभी लोगों को जान लिया गया है. मैंने तय किया मैं शंकास्पद स्थिति में नहीं रहूँगा. मुझे इन लोगों के बारे में अपने इस यकीन को जोड़ना है कि वे जीवन को अटूट शृंखला को तोड़ने की घात में लगे हुए हैं.

धीरे-धीरे मनोहर को गये एक वर्ष बीत गया. मेरी नौकरी नहीं लगी और मुझे लगा अब सड़ जाने निर्जीव हो जाने, में अधिक देर नहीं है. यह समय मेरे ऊपर कसाई के चाकू की तरह चल रहा था. मुझको लगा मैं डगमगा जाऊंगा. इस बीच दिल्ली शहर से मनोहर की खबरें आने लगी थीं. ये खबरें मनोहर के पतन की नहीं थी. मेरी बातों पर लोगों का भरोसा उखड़ने लगा. लोग इस मूड में थे जैसे मुझे क्षमा करने पर उतारू हों. एक बार गजट में मनोहर का फोटो भी आया. उसमें वह मोटा ताजा लगता था. गजट सारे कस्बे में घूम रहा था. गजट बिलकुल मैला और जर्जर हो गया था. फिर भी लोग उसे देख रहे थे. देखते थे और बातें करते थे. वे मनोहर के रंग पर खुश थे.

मां ने मेरी तरफ उदासी से देखा. उस वक्त मैं भी गजट में मनोहर का फोटो चोरी से देख रहा था. उसने कमजोर आवाज में बताया लोग कह रहे है, मनोहर ने दिल्ली शहर पर अपना झंडा गाड दिया है.

जब कहीं कोई तिनका नहीं मिला, कहीं कोई किरण नहीं दिखी तो मनोहर ने मुझे एक छोटे से काम के इन्तजाम के बारे में लिखा. मुझे मालूम पड़ गया कि मेरे पिता ने उसे गिड़गिड़ाकर लिखा था. उसके काम और मेरे काम में राजा और भंगी जैसा फर्क था. इसके पहले कि मैं निश्चित होता, उसने मुझसे तपाक से कहा, देखो यह दिल्ली है, बहुत ऊंचा शहर. यहां अपना गवंई रागड़पन मत दिखाना. यहां बड़े-बड़े लोग एक मिनट में चलते फिरते नजर आते हैं.

उसने मुझे उस समय तक साथ रखा जब तक उसके दान की समस्त स्थितियों से मैं परिचित नहीं करा दिया गया. बाद में उसने कहा, अपना बन्दोबस्त खुद करो और कभी-कभी आ जाया करना. जब तक मैं उसके साथ था वह हर थोड़े समय के बाद मुझे बता दिया करता था कि मैं कभी न भूलूं, यह दिल्ली है. पता नहीं वह मुझे आतंकित कर रहा था या सावधान और मैं एक बेहया की तरह मन ही मन हंसता रहा. मेरी हंसी का यह तात्पर्य नहीं था कि मैंने शहर पर काबू पा लिया है. मैं एक छोटी जगह का बाशिन्दा था, मैं केवल खीस सकता था. मेरी हंसी को। बजह दिल्ली। नहीं दिल्ली का तकिया

ग़ुलाम था. शहर आये हुये मुझे मुश्किल से कुछ महीने हुये थे

मनोहर ने जो भी किया, वह सभ्रांत होता गया. लेकिन वह बेहद संतुलित था. उसने ग़रीब और साधारण लोगों के प्रति अपनी दिलचस्पी कभी नहीं छोड़ी. टैक्सी वाले से वह जैसा बर्ताव करता वैसा भाईचारा आजकल केवल समझदार लोग ही कर सकते है. वह चांदनी चौक जलेबी खाने जाता और दुकानदार से चीनी की कालाबाजारी की पूछताछ करता था. वह मुझे पुराने निजामुद्दीन की गलियो मे तंग हालत मे पड़े लोगो की तस्वीर दिखाने ले गया. उसने मुझे सारे नर्क धीरे-धीरे दिखा दिये. लेकिन वह मुझे अन्तर्राष्ट्रीय चकाचौंध के स्थानों पर नहीं ले गया भव्य और आभिजात्य की जगहो मे उसके साथी दूसरे हुआ करते थे वह मुझे लाल किले के मैदान मे अकसर ले गया, यहाँ मुझे अपने कस्बे जैसा लगता था. यह मनोहर की सूक्ष्म बुद्धिमानी थी. मैदान में बैठकर हम मूंगफली खाते, उड़ती हुई पतगो को देखते और अपने कस्बे की बातें करते वह कस्बे पर बहुत दया दिखाता था. सब कुछ हो जाने के बाद वह रुमाल झाड़ कर उठ खड़ा होता. मुझे बस मे धकेल कर चला जाता मुझे पता था कि अब वह सीधे ला बोहीम मे जायेगा. मैने उसके पास कभी ठमना पसंद नही किया और न उसके बर्ताव से अपमानित अनुभव किया. लेकिन क्या मैं इतना भी नही समझ सकता था कि यह व्यक्ति भेदी है और चालाक.

मनोहर को असलियत सूंघने, महसूस करने के बावजूद मैं उस पर आक्रमण नही कर सकता था. अभी मेरे पास कानूनी दुनिया को प्रभावित करने वाले प्रमाण नहीं थे. पर्दा उठाने की घंटी बजने मे अभी पता नहीं कितनी देरी थी. मैंने अपना समय गवाया नही. मैं किसी भी प्रकार के बौद्धिक समारोह मे शामिल नहीं हुआ. मैं ऐसे अवसरो के लिए नाक़ाबिल और अटपटा था. मैं अपने परिवार समेत इस फिजूल के शहर पर बिखरा हुआ था. मुझे नौकरी करनी थी. बच्चे पालने थे और थका देने वाले इन टिटहरों के साथ एक अटूट आदमी की परीक्षाएं भी देनी थीं.

देखते-देखते, प्रस्तुत समय पर मनोहर खिंचे हुये रबड़ की तरह फैल गया. वह गुलमर्ग की तेजी सा बढ़ता जा रहा था. वह गदरा रहा था. उसका कस्बे वाला ठूंठ अब लापता हो चुका था. मैंने उसे अधिकतर ऊंचाइयों और शान में जगमगाते हुये देखा. रेस्त्राओं मे वह हमेशा ही लोगो से घिरा हुआ होता. उसको देखकर लगता था कि वह नगर का मौलिक व्यक्ति है या मूल व्यक्ति

मुझे या मुझ सरीखे खुरदरे लोगों को ऐसे उच्च स्थानों पर देखते ही उसकी आकृति मुद्राओं के दबाव में व्यस्त हो जाया करती थी गोया आइसक्रीम खाना केवल एक बहाना है- असली चीज है उसका दबा हुआ आशीर्वाद समायोजिता और सतत छाई रहने वाली एक राष्ट्रीय परेशानी.

वह किसी भी अवस्था में बैठा हो. नहीं लगता कि वह मंच पर मंडित है. मैं समझ गया, वह गुसलखाने में भी प्रशान्त रहता होगा और हाथ पैर फेंकते, मुट्ठियां कसकर, जबड़े भींचकर कुछ बोलने के बाद ही एक मोटा पानी बदन पर डालता होगा। रजाई के गूदड़ से बना हुआ यह पुतला देश के मंच पर उस समय बेतहाशा बिजली चटक रहा था. उसने साहित्य को धर्म कांटे में तब्दील कर दिया. दूध का दूध और पानी का पानी. उसकी कविता में तुक बेहद नुकीले और नोक देने वाले थे.

टटोलते-टटोलते एक ऐसा समय आया जब मनोहर ने इन्सानियत समझ, अवाम की नाड़ी पकड़ ही ली. उसने नाड़ी नहीं छोड़ी. उसकी मांग यह थी कि मैं आम आदमी हूं और उसे खोजने के लिए भटक रहा हूं. मैं यह कहने की तीव्र इच्छा रखता था कि लोगों सावधान अपनी आस्तीन झटको लेकिन मैं केवल अपने को सावधान बनाने के अलावा कुछ नहीं कर सका.

मनोहर का गणित लाजवाब था. उसको डर भी कुछ नहीं था क्योंकि उसके आगे पीछे एक अच्छा खासा अहो अहो दल था। ये सभी लोग अपनी छाती में हाथ मानवता का दर्द और मुंह में लोकतंत्र की सुसनी लिए हुए थे. उन्होंने मनोहर को उस ऊंचाई तक पहुंचा दिया जहां जिंदगी बैयरा की तरह उसके कटोरे में खोरवा परोस रही थी.

मैं कुछ नहीं कर सकता था. लोग मेरी चटनी बना देते. मुझे यकीन था कि सुबह होने के पूर्व ही यह व्यक्ति गठरी बांधकर चल चुकेगा लेकिन इस सचाई का रत्तीभर भी सामाजिक लाभ मैं नहीं लुटा सका. मनोहर ने बुद्धि का योग साध रखा था. मीर किस्म के शक्तिशाली लोग भी उसे रंगे हाथ नहीं पकड़ना चाहते थे.

जब शहर की जानकारी काफी कुछ मुझ पर खुल गई तब पता चला, यहां का मामला बेहद संगीन है. लगता था होश उड़ जायेगा. यहां कला के सुन्दर बदन और उनकी तिलस्मी चाल ढाल से भरे स्थान, शीशों पर तैल आकृतियों जैसी बिछलती रोशनी थी और थी बिगाड़ने वाली नशीली महक. चित्रकार रंगीन कीचड़ की दुर्घटनाओं में थरथर कर रह रहे थे. कूकते कवियों, पोथा लिक्खाड़ों, स्निग्ध अखबार नवीसों और शीर्ष बुद्धिजीवियों का भी एक झुंड था. इन सबके पास अपनी जगहें थी. ये सब लोग स्वतंत्र थे और इन्होंनें लड़ाई झगड़े को माफ कर दिया था. कदम-कदम पर ऐसा संगीत प्रसारित होता मिलता कि आश्चर्य होता था, आसपास पौधे कैसे जीवित है और खिड़कियों के कांच क्यों नहीं चटक गये हैं.

मैंने ऐसी अमीरी कभी नहीं देखी थी. न उसकी अफवाह ही सुनी थी. एक मजेदार बात पर वहां मैंने यह भी गौर किया कि श्रेष्ठियों को नौजवान सताने अपने ही घर में सेंध लगा रहे हैं. इस बात से मैं खुश भी हुआ यद्यपि यह खुशी अस्वस्थ और जहरीली थी. इन श्रेष्ठी पुत्रों ने माया का हैरतअंगेज खेल शुरू किया हुआ था. इन्हें कोई नहीं रोक सकता था, ये आत्महत्या पर उतारू हो चुके थे.

इस प्रकार नगर पर वनमानुषो ने कब्जा कर रखा था गनीमत महज इतनी थी कि
भौगोलिक दृष्टिकोण से ये शहर के एक थोडे और अलग हिस्से पर ही काबिज थे
बकाया पूरा इलाका गरीबो और मेहनतकशों का था. मैं शहर के गुलजारो से कई बा
फसते फसते वापस हुआ. मुझे फूंक फूंक कर चलना पडता था. अनगिनत बार इस
कठोर अनुशासन की वजह से दिन मलाल मे डूबा और चेहरे पर भुखमरी छा गई
लेकिन फिसलन के ऐसे खराब वक्त मे दिमाग ने एक खास किस्म से मुस्कराकर शहर के
गुलजारो का चिठ्ठा खोल दिया. दिमाग के अलावा जो दूसरी बडी बात थी वह थी
रकम का टोटा। इस टोटे ने दिमाग से कहीं ज्यादा शक्तिशाली कवच का काम किया.

मैं इस शहर के मांसल सैलाब मे गड़प हो गया होता या पूंजी चमत्कार के बारे मे बि
गया होता तो मुझे लगता मेरा चेहरा काला है। हर हालत मे मेरी आंखो पर धुंध होत
और कुछ समय बाद पेट पर तोंद, पच्चीस तीस साल का नौजवान इस देश मे अगर फू
हुये पेट का रोगी हो तो आपको उस पर शक करने का पूरा हक है.

मनोहर पर मुझे इसलिये शक है. मेरी पत्नी मुझे कई बार टोक चुकी है, आखिर तुम
मनोहर मे इतनी खार क्यो खाते हो. हजारो लोग लकदक की तरफ भाग रहे हैं पर उस
बिचारे के पीछे पड़े रहने की बात, मुझे तो समझ मे नही आती.

मैं अपना अलग ही बड़बड़ाता रहता हूँ इसने अपनी गरीबी छोड दी, अपने घर को ताल
मार दी. फिर भी मैं गुमसुम और उदास रहा. मुझे पता नही क्यो उम्मीद थी कि
मनोहर अपने दिमाग का सदुपयोग करेगा लेकिन वह सीधा मुनाफे की तरफ चला गया
इसने ज्यों-ज्यों अपनी गृहस्थी सजानी शुरू की, वह तिकड़मी होता गया और उसकी
अभूतपूर्व आत्मकता की गर्दन टूटती गई. उसकी आवाज अब मुरमुरे के थैले की तरह
बजने लगी है और वह पैंतरा बदलने की सोच रहा है.

मनोहर ने पैंतरा बदला. इस सब कुछ चलते समाज मे यह पैंतरा, अधेरे बिस्तर पर
शरीर की खामोश करवट जैसा नामालूम था. मनोहर स्थूल होता जा रहा था, गोल
मटोल और थुलथुल. यद्यपि उसे मनोहर पुकारना बडा अटपटा लगता था फिर भी उसके
नाम का बैंड बजता जा रहा था.

इस बीच सौभाग्य से मनोहर मडली में अपने समय के एक सर्वाधिक छटे हुए बुद्धिजीवी
का आगमन हुआ. वह दुनिया घूमा हुआ एक कमसिन नौजवान था लेकिन लोकतंत्र के
दलान में उसे ऐसा काटा कि उसकी कमसिनी चक्कर मे आ गई. जब वह भूंकने लगा,
लोगों को आश्चर्य हुआ कि पैंतीस वर्ष तक बिकना रहने के बाद कोई भी व्यक्ति एकाएक
कैसे भूंकने लगा. क्या कमसिनी उसका अपराध थी? अगर हां तो यह इस व्यक्ति
की आश्चर्यजनक उपलब्धि है.

इस व्यक्ति का नाम था सोमदत्त. मनोहर की तुलना मे सोमदत्त काफी दुबला था. क

वह किसी भी अवस्था में बैठा हो. यही लगता कि वह मंच पर सक्रिय है. मैं समझ गया, वह गुसलखाने में भी अशान्त रहता होगा और हाथ पैर फेंकते, मुट्ठियां कसकर, जबड़े भींचकर कुछ बोलने के बाद ही एक लोटा पानी बदन पर डालता होगा। रजाई के गूदड़ से बना हुआ यह पुतला देश के मंच पर उस समय बेपनाह बिजली पटक रहा था. उसने साहित्य को धर्म कांटे में तबदील कर दिया. दूध का दूध और पानी का पानी. उसकी कविता में तुक बेहद नुकीले और भोंक देने वाले थे.

टटोलते-टटोलते एक ऐसा समय आया जब मनोहर ने इन्सानियत समझ अवाम की नाड़ी पकड़ ही ली. उसने नाड़ी नहीं छोड़ी. उसकी चाल यह थी कि मैं आम आदमी हूँ और उसे जोड़ने के लिए भटक रहा हूँ. मैं यह कहने की तीव्र इच्छा रखता था कि लोगो सावधान अपनी आस्तीन झटको लेकिन मैं केवल अपने को सावधान बनाने के अलावा कुछ नहीं कर सका.

मनोहर का गणित लाजवाब था. उसको डर भी कुछ नहीं था क्योंकि उसके आगे पीछे एक अच्छा खासा अहो अहो दल था। ये सभी लोग अपनी छाती में हाथ मानवता का दर्द और मुंह में लोकतंत्र की चुसनी लिए हुए थे. उन्होंने मनोहर को उस ऊंचाई तक पहुंचा दिया जहाँ जिंदगी बेयरा की तरह उसके कटोरे में शोरबा परोस रही थी.

मैं कुछ नहीं कर सकता था. लोग मेरी चटनी बना देते. मुझे यकीन था कि सुबह होने के पूर्व ही यह व्यक्ति गठरी बांधकर चल चुकेगा लेकिन इस सचाई का रत्तीभर भी सामाजिक लाभ मैं नहीं जुटा सका. मनोहर ने बुद्धि का योग साध रखा था. मीर किस्म के शक्तिशाली लोग भी उसे रंगे हाथ नहीं पकड़ना चाहते थे.

जब शहर की जानकारी काफी कुछ मुझ पर खुल गई तब पता चला, यहां का मामला बेहद संगीन है. लगता था होश उड़ जायेगा. यहीं कला के सुन्दर बदन और उसकी [illegible] भाप हाम से भरे स्थान, शीशों पर तैल आकृतियों जैसी फिसलती रोशनी थी और थी [illegible] वाली नशीली महक. चित्रकार रंगीन कीचड़ की दुर्घटनाओं में बसर कर रह रहे थे. [illegible] कवियों, पोथा लिखारों, [illegible] अखबार नवीसों और जीर्ण बुद्धिजीवियों का भी एक झुंड था. इन सबके पास अपनी जगहें थीं. ये सब लोग स्वतंत्र थे और इन्होंने लड़ाई झगड़े को साफ कर दिया था. कदम-कदम पर ऐसा संगीत प्रसारित होता मिलता कि आश्चर्य होता था, [illegible] और खिड़कियों के [illegible] नहीं [illegible] है.

[illegible] ऐसी फकीरी कभी नहीं देखी थी. न उसकी [illegible] ही सुनी थी. एक मजेदार बात [illegible] यह भी तौर किया कि [illegible] को नौजवान बनाने वाले ही [illegible] में [illegible] रही है [illegible] भी हुआ यद्यपि यह खुशी [illegible] और जहरीली थी. [illegible] आत्मा का [illegible] किया हुआ था. [illegible] कोई नहीं [illegible] था, वे [illegible] पर उदास हो चुके थे

स प्रकार नगर पर वनमानुषों ने कब्जा कर रखा था गनीमत महज इतनी थी कि
भौगोलिक दृष्टिकोण से ये शहर के एक थोड़े और अलग हिस्से पर ही काबिज थे.
बाया पूरा इलाका गरीबों और मेहनतकशों का था. मैं शहर के गुलजारो से कई बार
फंसते फंसते वापस हुआ. मुझे फूंक फूंक कर चलना पड़ता था. अनगिनत बार इस
ठोर अनुशासन की वजह से दिन मलाल मे डूबा और चेहरे पर भुखमरी छा गई.
लेकिन फिसलन के ऐसे खराब वक्त मे दिमाग ने एक खास किस्म से मुस्कराकर शहर के
गुलजारो का चिट्ठा खोल दिया. दिमाग के अलावा जो दूसरी बड़ी बात थी वह थी
रकम का टोटा। इस टोटे ने दिमाग से कहीं ज्यादा शक्तिशाली कवच का काम किया.

इस शहर के मांसल सैलाब मे गड़प हो गया होता या पूंजी चमत्कार के बारे मे चिर
गया होता तो मुझे लगता मेरा चेहरा काला है। हर हालत मे मेरी आंखों पर धुंध होती
और कुछ समय बाद पेट पर तोंद. पच्चीस तीस साल का नौजवान इस देश मे अगर फूले
हुये पेट का रोगी हो तो आपको उस पर शक करने का पूरा हक है.

मनोहर पर मुझे इसलिये शक है. मेरी पत्नी मुझे कई बार टोक चुकी है, आखिर तुम
मनोहर से इतनी खार क्यो खाते हो. हजारो लोग लक्दक की तरफ भाग रहे हैं पर उसी
बिचारे के पीछे पड़े रहने की बात, मुझे तो समझ मे नही आती.

मैं अपना अलग ही बड़बड़ाता रहता हूं इसने अपनी गरीबी छोड़ दी, अपने पर को लात
मार दी. फिर भी मैं गुमसुम और उदास रहा मुझे पता नही क्यो उम्मीद थी कि
मनोहर अपने दिमाग का सदुपयोग करेगा लेकिन वह सीधा मुनाफे की तरफ चला गया
इसने ज्यों-ज्यों अपनी गृहस्थी सजानी शुरू की, वह निकम्मा होता गया और उसकी
अभूतपूर्व आत्मकला की गर्दन टूटती गई उसकी आवाज अब मुरमुरे के थैले की तरह
बजने लगी है और वह पैंतरा बदलने की सोच रहा है.

मनोहर ने पैंतरा बदला. इस सब कुछ चलते समाज मे यह पैंतरा, अंधेरे बिस्तर पर
शरीर की खामोश करवट जैसा नामालूम था. मनोहर स्थूल होता जा रहा था, गोल
मटोल और थुलथुल. यद्यपि उसे मनोहर पुकारना बड़ा अटपटा लगता था फिर भी उसके
नाम का डंका बजता जा रहा था.

इस बीच सौभाग्य से मनोहर मंडली में अपने समय के एक सर्वाधिक छंटे हुए बुद्धिजीवी
का आगमन हुआ वह दुनिया घूमा हुआ एक कमसिन नौजवान था लेकिन मोहल्ले के
ध्यान मे उसे ऐसा काटा कि उसकी कमसिनी चक्कर मे आ गई. जब वह भूंकने लगा,
लोगों को आश्चर्य हुआ कि तीस वर्ष तक बिकना रहने के बाद कोई भी व्यक्ति एकाएक
कैसे भूंकने लगा क्या कमसिनी उसका इस्लाम थी? अगर हां तो यह इस व्यक्ति
की आश्चर्यजनक उपलब्धि है.

इस व्यक्ति का नाम था सोमदत्त. मनोहर की तुलना मे सोमदत्त भारी पड़ता था. वह

कोमल, कबूतर जैसा, नीली आँखों वाला, कलाकार लगता था. मेरा अनुमान था कि बाहर से नितांत भिन्न लगने वाले ये दोनों व्यक्ति अंदर से एक ही प्रकार के मनुष्य या गिद्ध हैं. इनकी ऊपरी भिन्नता इतनी अधिक थी कि जैसे टेबुल की एक तरफ गंजी खोपड़ी रखी हो और दूसरी तरफ केश सजा मस्तक.

मैंने गौर से देखा, सोमदत्त के बदन के खुले हिस्सों पर कहीं कोई जख्म या फुन्सीफोड़े का दाग नहीं था. यह मेरी बचपन की धारणा थी कि केवल राजा रानियों, परियों और राजकुमारों का शरीर बेदाग होता है. उनकी मांसपेशियां उभरी नहीं निद्रित थीं. तनाव केवल उस थोड़े से समय चालू होता जब उसे भूंकना होता. उसके वस्त्रों पर धूल नहीं थी, तिनके नहीं थे और न सिकुड़न. सुना यह जाता था कि इस व्यक्ति की प्रेमिकाएं हांगकांग से लंदन के बीच फैली हुई हैं. मैं सोमदत्त के अन्दर प्रेमी की सौभाग्यपूर्ण हलचल को खोजते-खोजते थक गया. वह कौन-सा जीवन नुस्खा है इसके पास जिसने इसके सभी दुख मार दिये हैं और यह सफलता की गर्द को स्वाद के साथ चाट रहा है. मैं हैरान था पर इसके अलावा और क्या हो सकता था कि सोमदत्त बुद्धिमत्ता का सफल आधुनिक भोला होता जा रहा है.

मनोहर का ताजा हाल यह था कि अब वह केवल अनिवार्य किस्म की ही शारीरिक हरकतें करता. वह सूत्रों मे बोलता और प्रश्न उत्तर के जंजाल से बाहर उदासी के साथ विश्राम करता रहता. यह उदासी किसी खास किस्म का गड़बड़झाला नहीं था. यह मनुष्य के अन्त की उदासी थी कई प्रेम, कई भरे हुए अलबमों, कई साक्षात्कार, कई उद्घाटन, कई अध्यक्षताएं, कई बार टेलीविजन और कई बार डेलीगेशन के बाद उसने समझ लिया, जल्दबाजी की जरूरत नहीं. जीवन की एक दो सफलताएं, एक दो उद्देश्य ही बाकी बचे हैं जबकि उम्र बमुश्किल अभी आधी भी नहीं ढली.

सोमदत्त हवाई जहाज से उतरकर एयरोड्रम से बाहर आया. एक क्षण के लिए वह ठिठका. इतने बड़े मुल्क में मुझे लेने आने वाला एक भी व्यक्ति नहीं है? जबकि उसे जानने वालों की संख्या इस समय एक लाख से भी अधिक हो सकती है. लेकिन, मेरे आने की खबर किसी को नहीं है. यह सोचकर वह एक क्षण में पूर्ववत हो गया. हवाई अड्डे की औपचारिकताएं निबटाकर उसने टैक्सी ली. उसका कोई घर नहीं था. उसके पास केवल पासपोर्ट और वीसा के बन्धन थे. वह कहीं भी सो सकता था, कहीं भी उग सकता था, कहीं भी काट सकता था. उसकी पुकार थी, भूगोल और राजनीति की सभी रुकावटें टूट जाएं. फिर भी इस सनातन संसार में जन्मभूमि और भाषा की मिर्च उसे परेशान कर ही रही थी

इस शहर में एक ही ऐसा व्यक्ति था जहां वह सोचे बिना इत्तिला के जा सकता था. वह मनोहर था. बाकी लोग जो नागरिकता के राष्ट्रीय नियमों के अनुसार हिसाब किताब

रगते थे, उसे भूल रहे थे सोमदत्त इसलिये वापस हुआ था कि उसे पुन याद किया जाने लगे और मातृभूमि में अपनी पताका एकबार फिर से फहरा कर फिर कुछ समय के लिए तसल्ली के साथ प्रवासी हो सके. अपने इस करतब के लिए वह कई बार आना जाना कर चुका था.

टैक्सी भागती रही. उसने कभी-कभी बाहर देख लिया. वह एक सुनसान तरीके का देखना था. परिवर्तनों की तरफ वह दिलचस्प नहीं था. उसके लिए यह एक मामूली बात थी. फ्रेंकफुर्त, बर्लिन, न्यूयार्क, पेरिस, लदन और कहां दिल्ली.

उसका मित्र मनोहर अब तक काफी उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था. उसने सोमदत्त को देखकर ठंडा आश्चर्य प्रकट किया, तुम आ गये ? मुझे बहुत अफसोस है कि मेरे कई बार मना करने के बावजूद तुम यहां वापस आ गये.

'यहां कुछ भी नहीं बचा है' वैसे वह खुश भी हुआ कि उसके कमरे में विदेशी लेवल लगा कीमती सामान रख दिया गया है और उसका एक नामी दोस्त अब कुछ समय के लिए शहर में उसके वायें-दायें रहेगा.

आगन्तुक खिला हुआ और तरोताजा था. उसके ऊपर यात्रा कहीं नहीं दिखती थी. वह तत्काल गुसलखाने में आया लगता था. सोमदत्त ने कहा, 'ये सब फिजूल की बातें छोड़ो. 'देखो मैं बीयर की कितनी बोतलें ले आया हूं' देखते ही देखते उसने कुछ नहीं तो सात आठ बातलें बिस्तरे पर एक के बाद लुढ़का दीं.

'इन्हें फ्रिज में रख दो.'

मनोहर ने लगभग कराहते हुए कहा 'मैं समझता हूं, तुम मेरा उपहास नहीं कर रहे हो लेकिन फ्रिज मैं जल्दी ही खरीद लूंगा यहां वोल्टेज में बहुत हेर फेर होता है और दूसरे तीसरे पावर गायब रहता है.'

सोमदत्त ने बहुत मामूली सा सुना. वह एक पल को परेशान हुआ. 'फिर इन बोतलों का क्या होगा ? दिल्ली बेहद गर्म है और मैं बेहद प्यासा.'

'बर्फ है.' मनोहर ने इतमिनान से बर्फ साफ की और चुपचाप तोड़ने लगा. ऐसा लगा, सोमदत्त को बर्फ से खुशी नहीं हो रही है.

मनोहर आवश्यकता से अधिक चुप था जबकि परिस्थितियां वाचाल होने की थीं

'मैं एक परिवर्तन तुम्हारे अन्दर देख रहा हूं,' सोमदत्त ने कहा, 'तुमने बोलना काफी कम कर दिया है. तुम्हारे देश में यह चुप्पी अधिकतर स्त्री द्वारा उत्पन्न निकम्मेपन की निशानी है इसलिए तुम्हें सावधान रहना चाहिए और गलत बारदातों में नहीं पड़ना चाहिए.'

'नहीं, मैं आजकल चुप रहना ही पसंद करता हूं. इस देश में पुरुष और स्त्री की आवाजें अलग-अलग है. पुरुष की आवाज़ अश्लील हो गई है.'

वर्षों अब तक टुकड़ों में तैयार हो चुकी थी.

'तुम्हें यह अनुभव, यूरोप में नहीं मिलेगा. वहां पराजयें हैं इसलिए स्त्री की पूर्णता और भार उसकी अपनी जिम्मेदारी है.'

'मैं समझता हूँ, वहां रमणीक स्थानों की बहुतायत, खाने पीने की असंख्य सहज रूप से उपलब्ध वस्तुओं, मनोरंजन के विविध साधनों, स्वास्थ्य और सुगम शरीर के कारण स्त्री का ठेंगा ज्यादा काम नहीं करता होगा.' यह वाक्य मनोहर ने किसी तकलीफ में नहीं वरन बीयर के घूंट, सिगरेट के धुएं और काजू के टुकड़ों के भीतरी स्वाद में खोकर कहा, लेकिन तभी उसने तनाव महसूस किया. तनाव से अधिक यह एक खास प्रकार की 'किक' थी. इस 'किक' से मस्तिष्क उछलता हुआ काम करता है. यहां इस तरह आकर तुम क्या समझ सकते हो ? तुमने कभी समझने का प्रयत्न भी नहीं किया. तुमने अपनी महत्वपूर्ण उम्र दूसरे मुलकों में बिताई है. तुम्हारे लिए अब बहुत मुश्किल है.

'यहां ठीक खाना नहीं मिलता. भूखे को सम्मान नहीं मिलता. रहने को मकान नहीं है और शोभा और समय के लिये स्त्री नहीं मिलती. कलाकारों की हालत थकी वेश्या या टूटे पहलवान जैसी हो गई है. शादी तो यहां मर पटक कर करनी पड़ेगी. तुम नहीं जानते कि तुम्हारे छँ वर्ष के प्रवास में हमारी पीढ़ी का एक भी नौजवान नहीं बचा." मनोहर ने एक तगड़ा घूंट लिया और टेढ़े तरीके से कहा, "इस देश में रहकर बताओ तो समझूं. तुम 'जू' में रह सकते हो लेकिन इस देश में नहीं."

इस टेढ़ेपन पर सोमदत्त मुस्कुराया, वह धीरे-मुंगा था. वह भव्य तरीके से खुश हुआ. मुस्कुराहट का तात्पर्य बहुत बारीकी से बाहर आया. मैं क्यों फंसूं ? तुम सब मेरे सयानेपन पर सरपटक पटक के मर जाओगे. तुम लोग पहले से ही मर रहे हो. मुझे कुत्ते ने नहीं काटा है जो यहां सड़ता रहूँ. मुझे तो कभी-कभी आना है और बन्दोबस्त करके चले जाना है.

टम्बलर की बाकी बीयर सोमदत्त ने गट गट, गट, उच्छृंखल तरीके से खत्म कर ली. यद्यपि उसका तरीका यह नहीं था. वह बीयर को चूम-चूम कर पीता था.

छः वर्ष बाद मनोहर और सोमदत्त की मुलाकात का यह पहला टुकड़ा था.

दूसरी बार सोमदत्त की उपस्थिति में मनोहर से मेरी मुलाकात एक शानदार लेकिन तनहा आयोजन में हुई. मुझे जीवन में पहली बार शहर के एक सर्वाधिक भद्र स्थान में अवसर मिला. किन्हीं अर्थों में यह मेरा ठसियलपन भी था. वहां मैं मूर्तिवत एक चित्र विचित्र जीवन और उसकी भाषा का दर्शक बना बैठा रहा.

मैं थोड़ा सा पीने और सोमदत्त के संस्मरण सुनने के अलावा और कुछ नहीं कर सका. शायद बोल भी नहीं सका. मैं वहां मनुष्य नहीं रह गया था. इस देश की कुत्ती जनता का एक नुमाइंदा था.

आहारकक्ष में, जहां हम बैठे. कीमती शमादान और मूर्तियां थीं. मखमली कालीन, सुनहली मेज, स्फटिक की राखदानियां और भ्रमण करता आहिस्ता संगीत था.

वे बैठकर बातचीत शुरू कर चुके थे. जल्दी ही वे मंजे हुए घाघपने पर उतर आये, मुझे लगा बौद्धिक तिकड़म का 'मी मां' हो रहा है. लेकिन वहां के माहौल में इतनी तरावट और कल्पना थी कि किसी भी व्यक्ति को 'मी मां' का पता नहीं लग सकता था.

कटे हुए शीशे के शानदार सफेद टम्बलर और ठंडी तरबतर बोतलों की सुनहली बीयर उनके सामने राहत की संजीवनी की तरह एक हाथ के फासले पर झिलमिला रही थी. यही वह नशा है जो पिछड़े हुए दकियानूस और साजिशपूर्ण अर्थ-व्यवस्था वाले भुखमरे हिन्दुस्तान में उनकी रक्षा कर रहा था. इस वातावरण में मेरी हवा बन्द थी. मैं सामान्य नहीं रह पाया. मैं थोड़ा ललच भी रहा था सोचा, अनुभव इतनी बुरी चीज नहीं है कि उम्दा वस्तुओं के मामले में बिल्कुल आध्यात्मिक भाव धारण कर लिया जाय. मैं कोई देह से उठा हुआ व्यक्ति नहीं था. यद्यपि मुझे सन्देह था कि मनोहर और सोमदत्त उस व्यवस्था को ढील दे रहे हैं *जो हर जगह धूल की तरह घुस जाती है. कहीं यह धूल मेरे अन्दर भी* तो प्रवेश नहीं कर रही है ? इन लोगों के जीवन में पिछला कुछ समय ऐसा भी था जब ये होशियार नहीं थे और मुश्किलों में गिरे पड़े । आज इन्हें दुख है कि वर्तमान नुस्खा न जानने की वजह से अतीत में उन्हें कुछ कठोर वर्ष गुजारने की बेवकूफी करनी पड़ी.

ज्यों ज्यों समय बीतने लगा हाल में रोशनियां कम की जाने लगीं. वहां बुझा हुआ, भूरा और मद्द प्रकाश था. वहां ऐसी व्यवस्था थी कि बाहर का मौसम, समय और प्रकृति लोगों को नामालूम रहे और खो जाय मुझे खुद कमजोर रोशनी पसंद आई क्योंकि मैं बाहरी और एक हद तक अजनबी था.

इस समय मनोहर एक मोटे सिगार की तरह, कभी कभी सुलगता मालूम पड़ रहा था सोमदत्त दुबला और चौकस पुतले की तरह शरीफ बैठा था. उसमें प्रथम कोटि का रूमानी सुनसान था. किसी निर्जन में लगे लैम्पपोस्ट की तरह जिसके शीर्ष पर कांच मढ़ा हो और जहां प्रकाश को महज सुन्दर बनाकर बेकार कर दिया गया हो. उसका चेहरा समय के खुरदरेपन से सर्वथा मुक्त था.

वे दोनों आमने सामने थे, विदेश से लौटा सोमदत्त अपनी जगह पर हिलडुल नहीं रहा था. सिवाय बीच बीच में टम्बलर उठाने के उसे पीकर रख देने के. बातचीत के वक्त भी वह स्थिर दिखता था. यह उसके स्वास्थ्य और मोक्ष अवस्था की निशानी थी. मनोहर काफी शारीरिक हरकतें कर रहा था जो उस सीमित से स्थान पर संभव थीं, मुमकिन है, अपने को ठोस और आधुनिक बताने में सफल न हो पाने की वजह से वह बेताब होने लगा हो.

सोमदत्त प्रवास से लौटा हुआ नौजवान था. उसकी जेब में दूसरों को तड़का देनेवाला चहिक कुपस देने वाला विश्व बाजार था. उसे पता था जिल्द के ऊपर कैसे सवारी की जाती है. वह अपने दोस्त के लिए एक संवाद बोलता और बीयर में गुम हो जाता था, दस पन्द्रह मिनिट के बाद दूसरा संवाद बोलता और बीयर में डूब जाता. बीयर के प्रति वह अत्यंत कोमलता और अजीजगी का बर्ताव कर रहा था. दरअसल, यह एक बहुत आसान सी समझ थी कि वह अपने मित्र को इस तरीके से रेत रहा है. या फिर वह एक ऐसा मनुष्य है जिसको इस दुनिया में अभी तक कोई कक्षा या श्रेणी निर्धारित नहीं हुई है. जब लगता, अबड कुछ ज्यादा ही झमक रही है तब सोमदत्त एक छोटा मोटा संस्मरण जड़ लेता था. मुझे लगा सोमदत्त अब पूरी तरह से उच्च बौद्धिक हालत पर पहुँच गया है जहाँ से उसे वापस बुलाया नहीं जा सकता.

मुझे उकताहट होने लगी, मैं जितना पी सकता था वह पूरा हो चुका था. मैं अब उचट देता. बीयर ब्लैडर पर आ गई थी. फिर मैं यह जानने को भी बेकरार हो गया था कि इस कक्ष के बाहर क्या हो रहा है. बहुत समय एक ही प्रकार की प्रक्रिया में बीत गया. मैं अपनी मानसिक शान्ति के लिए किसी भी नये चेहरे को देखना चाहता था. मैं इस मामूली सी बात के लिए तड़प गया. हारकर मैंने वेटर की तरफ ध्यान दिया लेकिन तभी सोमदत्त ने एक निजी बयान शुरू किया.

'यह लंदन का वाकया है. वह रात जमा देनेवाली ठंड के चंगुल में छटपटा रही थी. लंदन को इस कदर निर्जन मैंने पहले कभी भी नहीं देखा था. मैं चौंतीस वर्ष की एक तीखी महिला मांडल को लेकर कमरे पर आया. मैंने बहुत प्रयत्न किये और अन्ततः उसके मध्य भाग के कुछ सफल स्केच के अलावा मैं कुछ भी नहीं कर सका. वहां चीजें जितनी पास और सुलभ लगती हैं उससे वे कहीं बहुत दूर और दुष्कर होती हैं. मेरी बहुत मनौती के बावजूद उस महिला ने मुझे झटक दिया और गलती हुई देर रात में भी लौट जाना पसंद किया क्योंकि उसे रास्ते में अपने इंतजार करते बच्चे का साथ करना था.

"स्केच करने के तुरन्त बाद मेरे अन्दर एक हिन्दुस्तानी अफसोस उत्पन्न हुआ. मैं अपने अन्दर की इस कील को पूरी तरह कैसे ठोक सकता था. मैंने उस पर १० पाउंड खर्च किये थे. लेकिन मनोहर तुम विश्वास करो, लंदन में यह मेरा अन्तिम अफसोस था.

"उस महत्वपूर्ण रात को मैंने एक अलौकिक रोशनी अपने अन्दर कौंधती हुई महसूस की."

इतना कहकर सोमदत्त खामोश हो गया. शायद वह लौट गया था. उसको धुरी से लगा वर्णन समाप्त हो गया है. उसने मनोहर और अपने टम्बलर फिर से भरे. फिर मेरी तरफ भी मुखातिब हुआ. उसने सम्भवतः मुझे समझने की जरूरत नहीं समझी एक तपाक से बनाई गई दया का उसने मेरे प्रति प्रयोग किया और कहा, 'आप भी पीते जाइये.'

छूटे हुए घटनाक्रम को उसने शुरू किया. "उस महिला के चले जाने के बाद मुझे रात को एक बजे पत्नी के हॉस्टल जाना पड़ा. रास्ते मे मैंने सोचा, आखिर इस कठिन और मूर्खतापूर्ण काम में क्यों लगा हूँ. लेकिन मैं रुका नही. मैंने कमाल किया उस जबरदस्त रात को मैं तीस मील गया. पत्नी ने बड़ी देखी और बेरुखी के साथ कहा, खेद है तुम्हारा इरादा पूरा नही हो सकता. इस वेवक्त मैं अपने को तैय्यार करने मे असमर्थ हूँ."

"तब रात के ढाई बज चुके थे. मेरे कोट पर काफी बर्फ थी. वह मुझे बैठने को नहीं कह सकती थी क्योंकि वैसा करने से उसका कमरा ठंडा और गंदा हो जाता"

"कुछ सोचकर उसने कहा, अच्छा एक मिनट और वह भीतर गई तब तक के लिए दरवाजा बन्द हो गया. जब वह खुला पत्नी एक पुर्जा लेकर सामने थी 'इसमें रुबी का पता है. वैसे तुम उसके पास पहले भी जा चुके हो. अगर तुम्हें तुरन्त टैक्सी मिल सके तो बीस मिनट मे पहुंच सकते हो वह तुम्हें थका देगी और कृतज्ञ साथ मे रम या ब्रांडी जरूर रखो. उफ यह ठंड. गुडनाइट' और द्वार बन्द हो गया, मैंने इस पार मे श्रीमती जी को धन्यवाद दिया. वह शायद ही सुना गया हो फिर मुड़कर पुर्जे को तेज बर्फीली हवा के हवाले कर दिया.

"धीरे-धीरे मुझे एक खुशी महसूस हुई मैं रात भर रास्तों पर चलता रहा और सोचता रहा. ठंड के लिए मेरी जेबों मे काफी शराब थी मुझे केवल एक ही शब्द समझ मे आया, आजादी. दिस इज फ्रीडम. एक दुर्लभ आजादी." अन्त के इस दार्शनिक मोड़ पर मनोहर ने एक गहरी और ठंडी सांस ली. इधर इस संस्मरण के साथ ही सोमदत्त का भ्रम पूरी तरह टूट गया हो ऐसा नहीं कहा जा सकता था. उसने एक चोट और की

"मैं यहाँ बार-बार आता हूँ पर यहाँ की भूमि, यहाँ के आकाश का मेरे लिये क्या मतलब रह गया है. मनोहर, बताओ, क्या मतलब है मेरे यहां आने जाने का ? उस आजादी के बिना क्या कहीं रहा जा सकता है ? जहां तक तुम लोगों का प्रश्न है, तुम्हारी इस आजादी से कभी मुठभेड़ नहीं हुई इसलिए अपनी गुलामी तुम्हें कभी नागवार नहीं लगेगी."

सिगरेट सुलगाते हुए सोमदत्त ने पूछा, 'तुम क्या सोचते हो ?' 'कुछ नहीं.' मनोहर ने थूक मुँह में इकट्ठा किया हुआ था पर उसे जगह का ख्याल आ गया सुन्दर जगहों में उसे थूकना नहीं आता था. उसने थूक वापस लौटा लिया.

"बंधन से शिकार ही न हो तो शिकारी कब तक भ्रम मारता रहेगा सोम, यहाँ केवल निब और स्याही है, रंग और ब्रुश है. इतने मात्र से क्या हो सकता है घटनाएं बन्द हो गई हैं. उमस भर गई है यहां. बैठे रहने के अलावा यहाँ कुछ नहीं किया जा सकता दुर्भाग्य से समस्त सुखद और चमत्कारिक घटनाएं समुद्र पार घट रही हैं इसलिए यहाँ लोग रचनारत हैं और हम तनावहीन रक्तदान में संन्यासी की तरह चुप रहे हैं."

सोमदत्त ने विशेष ध्यान नहीं दिया. वह मनोहर से फुसफुसाकर बोला 'जल्दी खत्म करो, अभी खाना बाकी है और यह निर्णय भी बाकी है कि तुम्हें अपने समाज पर आक्रमण करना है या नहीं.

'मेरी राय यह है कि तुम यहाँ से हटने की तैय्यारी शुरू कर दो.'

'लेकिन अब तुम देखोगे कि दिल्ली कितना बदल गया है, 'मनोहर मात्र एक दुबका हुआ श्रोता नहीं बने रहना चाहता था. उसने अपनी पहचान को अलग करना चाहा. "दिल्ली में अब काफी आक्रामक गतिविधिया हैं और तनाव भी और लड़कियां खूब दुस्साहसी, बुद्धिमान तथा आजाद हो चली है," कहते हैं हुए वह किंचित शरमाया गोया ये लड़कियाँ उसके घर की ही लडकिया है."

सोमदत्त ने मनोहर की तरफ ध्यान से ताका. मन मे सोचा, तो यह बात है भोंदू हिन्दुस्तानी. अभी तुम्हारे पास फार्मूला प्रेमिका और फार्मूला बीबी, इन दो तरह की देसी औरतो की जानकारी के अलावा और क्या है.

'सुनिये' कुछ सोचते हुए सोमदत्त ने कहा, वहा की बात बताता हूँ.

वहा अठ्ठारह साल की लड़की अपने चार मर्द मित्रो को एक पूर्व नियोजित आयोजन मे बुलाकर, एक क्षण मे उन्हे विभोर कर देती है. वह उनके बीच खड़ी हो जाती है, लगभग घिरी हुई. मर्द दोस्त जब तक उसकी छातियां गुदगुदाते हैं. एक दो तीन, वह लान मे खडे अपने प्रेमी को बाये हाथ की पिस्तौल से उडा देती है.

इसके बाद वे पांचों दौडते हैं, लाश को जमा कर जाते हैं और ठहाको से बगीचा गूंज जाता. ये स्त्रिया हैं जिन्होने पुरूषो को अदम्य साहस से भर दिया है और वे खतरनाक रास्तो पर चल पडे हैं.

मनोहर ने कहना चाहा, ऐसा मैंने हालीवुड फिल्मो मे भी देखा है पर वह बुरी तरह डरा और आतंकित था और नानी की कहानी की तरह सुन रहा था. बेहतर होकर बोला, 'यह गूमर और गर्यो का देश है. पिछले वर्षों मे यह देश बिलकुल बरबाद हो गया. अब यहा जीवन की गुंजाइश नही. मैं बार बार सोचता हूँ और समझ नही पाता कि कि तुम यहां वापस क्यो आये ?"

'तुमको पूरी तरह समझने मे अभी समय लगेगा लेकिन क्या तुम्हे अंदाज है कि यह बात तुम मुझसे तीन बार पहले भी कह चुके हो," नशे की हल्की लपट में सोमदत्त बोलने मे अधिक गुर्राया.

दिखे पाया सोमदत्त मनोहर के साथ बिलकुल वैसा ही व्यवहार कर रहा है जैसा मनोहर ने कभी मेरे साथ किया था.

मनोहर ने मार खाने और गिर पड़ने जैसा अनुभव किया पर उसने सोचा, उसका साथी अगर शराब और भोजन का बिल चुकता कर देता है तो यह मार फिलहाल चल जाएगी. फिर उसे यह भी लगा कि अभी मुझे अपना बहुत विकास करना है. इतना विकास की सोमदत्त पिछड़ जाय. इसलिए मुझे घायल होने की जरूरत नहीं है. उसने कड़वा घूंट चुपचाप पी लिया और अपने चेहरे को मदिर तनतनाहट में ढकेल दिया धिमी रोशनी की वजह से उसका चेहरा जाहिर नही था. एक बार पी कर उसने सोचा, 'ठीक है खरगोश अभी मैं कछुवा ही सही.'

इस मुलाकात के बाद यद्यपि अन्दरूनी तौर पर मनोहर काफी दुखी रहा लेकिन दोनो मित्रो ने मिलकर शहर मे जल्दी ही अस्तित्व की साजिश शुरू कर दी

सामाजिक जीवन मे एक नया दौर और गहमागहमी शुरू हुई बुद्धिमानो को भी तो आखिर कुछ करना था दुनिया उन्हे पुकार रही थी। वे हाथ पर हाथ धरकर कैसे बैठे रह सकते थे.

इन लोगो ने वातावरण मे हवा भरनी शुरू की अखबार, टेलीफोन, टेलीविजन प्रकाशनो और कला संस्थाओ को इन्होने अपनी खलल और हलचल से भर दिया. तब पता चला कि शहर मे केवल दो ही व्यक्ति नही हैं. ऊंघती हुई बहुत सी भीड़ें थीं, वे यकायक जाग गई. मैं खुद इस सरगर्मी पर विस्मित था. इतने सारे लोग यहां है !

मनोहर और सोमदत्त ने लिखा पढ़ी, सम्पर्क और फिक्र करने का काम आरम्भ किया जहां भी नायक मारा गया इन्होने आवाज दी. इन्होने राम रावण का प्रश्न समाप्त कर दिया. उनका कहना था मृत्यु मे व्यक्ति केवल मानव है अगरतप लोगो ने इनकी आवाज को चीखते हुए ग्रहण किया. इस जमात ने जूझते हुए मूर्ख लोगो को दर किनार कर दिया. कला दीर्घाओ मे सुरुचिपूर्ण हाथ हाथ का प्रदर्शन नियमित रूप से होने लगा. दूर खड़े हुए, यहां आकर देखते तो पता चलता कि इन लोगो मे नीले, पीले, सफेद, लाल सभी रंग मौजूद थे. इनकी दुनिया निहायत गर्म और रोमांचकारी लोकतांत्रिक थरथराहट से भरती जा रही थी.

मेरे सामने कठिन प्रश्न था, इन महानुभावो मे आखिर आपत्तिजनक क्या है ? ये बुरी चीजो के विरुद्ध है. शान्ति के लिए इन्होने अपना दस्तखत अभियान और रखा है फिर मेरे दिमाग मे इनका उल्लू क्यों खिंचा जा रहा है.

सोमदत्त ने बहुत थोड़े समय मे अपने को ताजा और समसामयिक कर लिया. जब उसने देखा कि काम ठीक से चल निकला है तब अपने इलाज की व्यवस्था देखनी शुरू की. एकबार उसकी किसी हसीना 'लिबर्टी' के सामने से गुजरने की थी. वह शुरू हो चुका

था और उसने स्थानीय बाशिन्दों का काम तमाम कर दिया. मन में आनन्द लिया, मध्यवर्गीय चूतियों अपनी कब्र मे करवटें लेते रहो, मैं चला.

मनोहर और सोमदत्त जहां रहते थे वह एक सुरक्षित स्थान था. वहां चोरी तंग और हिंसा नही थी वहां शरीर, सम्पत्ति और सतीत्व को बेपनाह चैन था. सभ्यता के ऐसे बाड़े से निकल कर हमारे मित्र सीधे जनता के बीच आते और दिनभर घूमघाम कर रात के अन्धकार में सही सलामत अन्दर हो जाते.

इन लोगो को बहुत कम समय मेहनत करनी पड़ी. शहर इन्हे काटे का बुद्धिमान मान चुका था. लेकिन दो हजार रुपये माहवार, उम्दा भोजन और मदिरा, सलीके से बिसराई हुयी सम्पन्न बैठक और आधुनिक महिलाओं की चहल पहल से भरे हुये वैचारिक कार्यक्रमों से गुजरने के बाद भी, भारतभूमि पर वे अकेले थे और जलबिन मछली की तरह तड़प रहे थे. मनोहर तो इधर बहुत तड़पने लगा था. असलियत यह थी कि पिछड़े हुए देश मे तरक्की करता हुआ अर्थ-शास्त्र उसके सामने एक नई दिक्कत पेश कर देता था. मन् साठ मे उसने सोचा था, चार हजार रुपये हो तो घर जरूरी वस्तुओ से पुरा हो जायेगा. आज वह सोचता है, बीस हजार से कम नहीं लगेगा और वह यहां, इस देश मे नामुमकिन है.

सोमदत्त की सुगन्धी ने मनोहर को पटरी पर से उतार दिया वह ऊपर से शान्त और चालू था. रात को जब वह पर लेटता, सोफे पर घंटों सुस्त पड़ा रहता. वह सोमदत्त का काटा हुआ था. उसका बदन टूटता और वह लेटे लेटे बड़बड़ाया करता. उसे शौक था और घबराहट, किसी दिन सोमदत्त बोर्डिंग पर बैठकर चला जायेगा, फिर क्या होगा यही खोट भरी तनहाई वाली दुनिया. बहुत सी इच्छाओं के साथ सुदर्शनों की भी इच्छा होगी.

उफ्, यहां कितना दम घोटू वातावरण है. वह उठकर लाचार नजरों से अपने कमरे उर्द गिर्द के कुछ को देखता रहता यहां रुमानियतों पुराना सन्नाटा, यहां सांसों के गाने वैसे [illegible] सुनने कोई. नहीं, नहीं मुझे गर्त में नहीं गड़ना चाहिए.

कविता यहां नहीं है, कविता बाहर है. यहां कविता दुर्लभ है कविता और प्रेम के बीच [illegible] [illegible] [illegible] से वह [illegible] [illegible] रहा था. [illegible] [illegible] गया !. [illegible] [illegible] मनोहर को [illegible] हो जायेगी.

[illegible] हो चुका था [illegible] [illegible] सोमदत्त [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनोहर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सामान्य [illegible]

आवाज की अन्तिम शराब लेकर आया. मनोहर के लिए उसने सीढ़ियों पर से ही घोषणा की, 'मेरे कागज आ गये है, गुडबाय कभी भी हो सकता है.'

मनोहर सोफे पर गुडी मुडी पड़ा था. वह एक कमजोर रोगी की तरह उठा. मालूम पड़ा वह रो रहा है. सोमदत्त को आलिंगनबद्ध करके वह रोता रहा. काफी देर तक सोमदत्त असलियत नही समझ सका. मुझे यहाँ नही रहना है. मैं यहाँ नहीं रह सकता मैं साथ चलूंगा. मुझे तुम मरने से बचा लो.' भावावेश मे मनोहर सोमदत्त के पाँव पर गिर पड़ा.

सोमदत्त ने मनोहर को वापस सोफे पर बैठा दिया.

'पागलपन छोड़ो, एक ताकतवर आदमी जैसा बर्ताव करो.'

मनोहर अपनी जगह मूर्ति जैसा खड़ा हुआ था 'यह बहुत आसान है मित्र' सोमदत्त संजीदगी से बोला, 'लेकिन इसके लिए बहुत सी तैयारियाँ करनी होंगी सबसे पहले तुम्हें अपनी प्रेमिका से मुक्ति लेनी होगी. यहां अपनी पूंछ छोड़कर तुम्हारा जाना मुनासिब नही है. तुम्हारे दिल को देखते हुए यह मुश्किल काम है लेकिन मैं सोचता हूँ कि अगर तुम अपने मा—बाप और घर को छोड़ सकते हो तो, प्रेमिका को क्यों नहीं छोड़ सकते ?

सोमदत्त सिगरेट जलाकर कमरे मे चहल कदमी करने लगा मनोहर अब हिलने डुलने लगा. उसने भी सिगरेट सुलगाई "मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ," सोमदत्त ने कहा, लेकिन तुम पहले वादा करो. तुम समझने का प्रयत्न करो कि प्रेम कुछ नहीं, सिर्फ पागलपन है"

दोनों मित्रो ने जैसे तैसे हाथ मिलाया. मनोहर झेंप रहा था और सोमदत्त ने मजाक शुरू कर दिये.

दूसरे दिन मनोहर चिन्ताजनक आधुनिक सन्निपात लिये हुये सोफे पर पड़ गया. वह जानता था, सुधा के आने का वक्त क्या है.

उसने बन्द आंखे खोली. माथे पर बल भरे हुए थे. सोफे पर बैठे हो पड़े हुए लड़की औरत से पूछा, "तुम कौन हो ? क्या दरवाजा खुला हुआ था ?

सुधा मुस्कुराई, 'बड़े मूड मे हो आज."

मनोहर चीख पड़ा 'अजनबी औरत, चलती बनो. मैंने समझ लिया है. मुझे प्रेम या ऐसी किसी भी चीज की जरूरत नही है'.

पतित होने से बच गया. मैंने कभी तय किया था, मुझे इसी तरह रहना है. मैं विचलित नहीं हो सकता.

उसके कमरे से उतर कर सुधा जब नीचे सोमदत्त के कमरे में पहुंची तो शहर के दक्षिणी हिस्से में पेड़ शोर के साथ हिल रहे थे. बड़े शहर में कमरे के अन्दर से मौसम का अन्दाज नहीं लगाया जा सकता. शाम से ही रात की फिजाँ छाने लगी थी. बादल खूब गरजे.

सुधा मोटी नहीं थी पतली थी, पतवार की तरह जब वह नीचे पहुंची, सोमदत्त कुछ लिख रहा था. सुधा ने उसे जाकर सब बताया. पहले तो वह चुप बैठा रहा फिर बोला, 'सुधा, तुम्हीं कहो मैं क्या कर सकता हूँ मैं तुम्हें देखकर बेहद उदास हो जाता हूं. मनुष्य हमेशा ही दुखी है. मैं तुमसे यही कहूँगा कि इस दुख को आजादी में बदल दो. पिंजड़े का परिन्दा मत बनो.

इसके बाद वह आध घंटे कुछ नहीं बोला. इतना ठोस बोलने के बाद चुप रहना ही बेहतर था. सोमदत्त अपने समय का एक अभूतपूर्व ठंडा आदमी था. आप उसे देखकर समझ नहीं सकते थे कि उसके शरीर के किस हिस्से में प्राण मौजूद है, वह अपनी गर्दन हिलाने और जुबान चलाने में बिल्कुल पक्षियों जैसी अदा रखता था. कभी कभी वह इतना स्थिर और मौन हो जाता जैसे शव लेकिन नहीं, वह शव जैसी मुसव्विर अवस्था को पहुंच गया था.

सुधा को इस चुप्पी के बीच अपने आत्म सम्मान का ध्यान आया होगा वह उठी और चलने को हुई. सोमदत्त ने कहा, 'सुधा, तुम्हें हट जाना चाहिये.' वह चली गई. उसने सुधा को पोर्च में, फिर लान से बाहर और अन्त में सड़क पटरी पर देखा. धूल ने सड़क के लैम्पस को घेर रखा था और पीली मटमैली रोशनी वहां एक घब्बे की तरह बिखरी थी.

'झटका' करने के बाद सोमदत्त को लगा उसकी आंख सहसा किसी कैमरा आंख की तरह निर्जीव हो गई है. एकटक और बारबार बस एक ही चित्र में से गुजर रही है. सुधा अब जा चुकी थी. सोमदत्त ने अपने को स्वच्छता और शान्ति के लिए झकझोरा. उसे, खेद नहीं बांछित था, भौतिक अपार को पार करना था.

जिस दिन, मनोहर ने सुधा को पहचानने से इन्कार कर दिया और उसे कमरे से बाहर निकाल दिया, उसी दिन से उसका भाग्य चमक उठा. उसे शीघ्र ही विदेश जाने का सुअवसर मिला. दरअसल यह अवसर एक तरह से सोमदत्त की मुट्ठी में था. सोमदत्त ने

उसे धीरे-धीरे दूर तक बढ़ा दिया. मनोहर नया था, वह अधिक आसक्ति के साथ डेक पर खड़ा रहा. थोड़ी देर बाद डेक और तटपर वेनाक्यूलर्स को कतार छा गई. मनोहर के पास वेनाक्यूलर नहीं था. मेरे पास भी नहीं था. यद्यपि इस समय मेरी सामाजिक चेतना और मेरी कठोरताएं मेरे पास नहीं थीं. फिर भी मैंने सोचा सूअर और कुतों का देश मनोहर को अब धुंधला लग रहा होगा.

मैं अपनी निजी और बुद्धिविहीन हालत मे घिरा हुआ, एक नौजवान आदमी के इस अस्त का समारोह नहीं मना सकता था. मुझे लगा, मनोहर शायद मुझे रूमाल दिखा रहा है. मैंने भी रूमाल हिलाया थोड़ी देर बाद हमारे हाथ थक गये ☐

[ वातायन के प्रकाशन मे विलम्ब के कारण पुनः प्रकाशित ]

=×=

# ग़ज़ल

मिलाप चन्द 'राही'

दुरूफ़े सियासियात में हो कर असीर लोग
तारीकियों में खो गए रौशनज़मीर लोग

क्यों एतमाद-ए-जोश-ए-जुनूं मुतमइन नहीं
क्यों हो गए हैं अपनी नज़र में हक़ीर लोग

ऐ इन्क़लाब अब तुझे क्या इन्तज़ार है
बातें बना रहे हैं बहुत हर्फ़गीर लोग

ए गर्दिशए-हयात मिटा दे हमें मगर
लाएंगे फिर कहां से हमारी नज़ीर लोग

हम से किसी पे फूल भी फेंके नहीं गए
किस तरह फेंक देते हैं फूलों में तीर लोग

शोले उगल रहे हैं जो पीते थे अश्केग़म
हैं आज सरबुलन्द जो कल थे हक़ीर लोग

हम से उलझ न गर्दिशे दौरां कि आज कल
लाते नहीं नज़र में तुझे भी फ़क़ीर लोग

# भूख के रंग

□ भंवर भावानी

जयसिंह रोड़ के चौराहे पर पीली बत्ती के कारण रामू को शरीर का पूरा दबाव डालकर रिक्शा रोकना पड़ता है. फटी कमीज की बाँहों से चेहरे पर का पसीना पोंछता है वह हाफ-हाफ कर सांस लेता है. उभरी हुई आंख के नीचे की हड्डियाँ. निराश आंखें, भुलसा हुआ चेहरा..... रिक्शे पर सवारियां और स्वयं पर भूख का बोझ ढोते तीसरा दिन हो गया है उसे..... ..

पीछे बैठी सवारियों में से एक पतली सी आवाज कान को मरोड़ देती है "पास से निकल चल ना, अभी लाल बत्ती हुई तो नहीं ना"

रामू पीछे घूमकर सब कुछ देख जाता है—गोरा चेहरा, नंगी पिंडलियाँ काला चश्मा, शेम्पू से धुले सूखे बाल, कानों में लटकती बालियां, दाहिने गाल पर जिसकी परछाई से बन गया गोल-गोल हिलता छोटा सा पहिया. स्लीवलेस आधी कमर ढँकता ब्लाउज. और पास में सोने की कमानी का चश्मा चढ़ाए व्यक्ति का नाजुक गर्दन को घेरा हुआ हाथ कलाई पर सोने की मोटी सांकल......और दोनों के बीच काला हैंड बेग और उस पर बोझ की तरह पड़े दोनों के एक एक हाथ.

सोने की कमानी से कसे चेहरे से आवाज फटती है 'कहा था न निकल जा जल्दी से हो गई न लाल बत्ती. मैंने पहले ही कहा था इन लोगों के दिमाग आसमान पर रहते है, माने... सुनते ही नहीं ........'

रामू पीछे घूमकर साहब को देखता है, वह पीली बत्ती बोलना चाहता है पर जुबान पर बैठी भूख उसके शब्द कुतर देती है वह खामोशी से

# ग़ज़ल

मिलाप चन्द 'राहि

डूबे निशातियात में हो कर असीर लोग
तारीकियों में खो गए रौशनज़मीर लोग

क्यों एतमाद-ए-जोश-ए-जुनूं गुरेज़ नहीं
क्यों हो गए हैं अपनी नज़र में हक़ीर लोग

ऐ इन्क़लाब अब तुझे क्या इन्तज़ार है
बातें बना रहे हैं बहुत हर्फ़गीर लोग

ए गर्दिशए-हयात मिटा दे हमें मगर
लाएंगे फिर कहां से हमारी नज़ीर लोग

हम से किसी पे फूल भी फेंके नहीं गए
किस तरह फेंक देते हैं फूलों में तीर लोग

[illegible] रहे हैं जो पीते थे अश्केग़म

# भूख के रंग

□ भंवर भावानी

जयसिंह रोड के चौराहे पर पीली बत्ती के कारण रामू को शरीर का पूरा दबाव डालकर रिक्शा रोकना पड़ता है. फटी कमीज की बाँहों से चेहरे पर का पसीना पोंछता है वह हांफ-हांफ कर सांस लेता है उभरी हुई मांस के नीचे की हड्डियाँ. निराश आँखें, झुलसा हुआ चेहरा..... रिक्शे पर सवारियाँ और हृदय पर भूख का बोझ ढोते तीसरा दिन हो गया है उसे...... .

पीछे बैठी सवारियों में से एक पतली सी आवाज कान को मरोड़ देती है "पास से निकल चल ना, अभी लाल बत्ती हुई तो नहीं ना"

रामू पीछे घूमकर सब कुछ देख जाता है—गोरा चेहरा, नीली किनारियों वाला चश्मा, शैम्पू से धुले सूखे बाल, कानों में लटकती बालियाँ, दाहिने गाल पर जिसकी परछाईं में बन गया गोल-गोल हिलता छोटा सा पहिया. स्लीवलेस आधी कमर ढँकता ब्लाउज और पास में सोने की कमानी का चश्मा चढ़ाए स्थूल सा मानुष गर्दन को घेरा हुआ हाथ कलाई पर सोने की मोटी माचस......और दोनों के बीच काला हैंड बैग और उस पर बोझ की तरह पड़े दोनों के एक एक हाथ.

सोने की कमानी से ढके चेहरे से आवाज फटती है 'कहा था न निकल चल जल्दी से हो गई न लाल बत्ती. मैंने पहले ही कहा था इन लोगों के दिमाग आसमान पर रहते हैं, साले. . सुनते ही नहीं ........'

रामू पीछे घूमकर साहब को देखता है, वह पीली बत्ती होकर चलना चाहता है पर फुटपाथ पर बैठी भूख उसके ऊपर हुकर देती है वह चारों ओर से

गालियां खाने की कोशिश करता है. रामू खूबसूरत चेहरे पर चू रहा पसीना देखता है, जिसके हिस्से की ओर फिसल फिसल जाती है बूंदें. वह शायद साहब की गर्ल फ्रेन्ड है, रामू उसकी नफासत उसकी बेचैनी पर बार बार झांकता है, पास बैठे बाय फ्रेन्ड साहब का हाथ भी उसे अच्छा नहीं लगता. वह कसमस कर बैग पर पड़े हाथ के सिवा सब कुछ को दूर हटाना चाहती है मगर साहब तो अपनी लाश ढरकाए हैं उस पर.

रामू बोलना भूला हुआ है सूखे हुए गले की पीडा भर मालूम है उसे. बड़ी आंत के भीतर बैठा है कोई बार बार उसकी जीभ खींच लेता है.........

बहुत धीरे २ घूम पाता है पहिया... . वह बुखार मे रिक्शा लेकर चल पड़ा है आज शाम उसकी भूख का तीसरा दिन पूरा होने को है- इस मोड़ से शायद आगे नहीं खींच पाए रिक्शा.

वह पिताजी को लिख देना चाहता है-वह किसी नौकरी पर नहीं है.जरूरतमंद को नौकरी नहीं मिलती भारी जेब के पास नौकरी दो कदम आगे बढ़ाकर मिलती है.........
यहां रिक्शा...... ..

वह नहीं लिख पाता. बूढ़ी आंखों से बेटे का सपना बोल जाता है— "मैंने जरूरतें निचोड़ निचोड़ कर पढ़ाया है तुम्हें— उम्र ले ली है मेरी. सामर्थ्य ने;, अब परिवार तुम्हारे कंधों पर है..दाने देती जमीन गिरवी है और ब्याज की सुई.घड़ी की सुई से तेज चलती है......मानो जमीन तो रहे . .......

कच्चे आंगन खड़े होने पिता का हाल मन और आंखों में सम्भाले ही आया था कालेज मे. एम. ए. तक पहुंच गया. प्रोफेसर बेहद नाराज हुआ करते थे प्रश्न.पूछने की अपनी आदत.से.इस तरह पिछड़ भी तो गया था गोशाल से;..चित्र पर चित्र.बनता घूमता है रिक्शा का पहिया— लड़कियों से छेड़छाड़ कबड्डी की टीम मे जाते रेलगाड़ी मे व्यर्थ की सर फुटौवल.

नीलम से बहस के बहाने उलझते रहना उसकी टेबुल पर खुजली की दवा छिड़क देना. परेशान नीलम की गालियों का सुख लेना फिर फिर कर ठहाके......

घूमते रिक्शे के पहिये मे नीलम का चेहरा गडमड.होता जा रहा है. कहां होगी... फिर कुछ तेजी से पहिया घूम जाता है

बार... ..बुखार चढ़बढ़कर आंखों के आगे घुमलाता है. सुना है—रिक्शा बनाने वालों

को बवासीर हो जाता है. इलाज करवाएगा पर किसका ? अपनी भूख का.........
पिताजी की आंखों मे स्याह होकर रह गए दंटे के सपने का...... परिवार का......
बुखार का बुखार और फिर ऊपर से कसैला स्वाद......

"जल्दी चल, फिर बत्ती होते ही ठहर जाएगा पैसा नहीं मिलेगा इस बार रुका तो"

बंद जुबान मे बुखार और कसैला हो जाता है. वह पूरा दबाव देकर हरी बत्ती रहते भीड़ चीरना चाहता है..... हरी बत्ती दौड़कर आगे निकल जाने को ही जनती है रास्ता छोड़ कर निकल जाए कोई भी आगे.

एक धक्का लगता है— सब कुछ बिखर जाता है-- रामू उसका रिक्शा, सवारियां......
दूर तक फैल गया खाना बैग . . रोटी की भूख के डिब्बे मे सोने के बिस्कुटों की भूख.

एक छोटा भूख पीले सोने की एक भूख—रामू को कोई नहीं देख पाया छोटी छोटी ठोक पीली रोटियां बिखरी पड़ी अलग २ लोगों की अलग २ प्रकार की भूख.

मुस्तैद वर्दियां आती है सोने के बिस्कुटों का हिसाब बनाती है. सामान के साथ सरका दिए गए हैं तीन शरीर— यहीं भूख की दो किस्मे एम्बूलेंस का इन्तजार है...... ...

# *न्यायतीर्थ

(उपन्यास)

ले. श्री गोपाल आचार्य

डॉ० रामानन्द

आज़ादी के बाद भारतीय जीवन में यदि कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है तो वह है विकृति. हो सकता है कि यह विकृतियाँ हर क्षेत्र में हमेशा से रही हों रही भी हैं, पर उनके प्रति जागरूकता और उनको उघाड़ कर रख देने की सुविधा वर्तमान प्रजातन्त्र ने ही दी. यह बात बिल्कुल दीगर है कि जितना ही विकृतियों को निर्ममतापूर्वक प्रस्तुत किया जा रहा है उतनी ही विकृतियाँ बढ़ती आ रही हैं. क्यों का जवाब इसी में मिल सकता है कि जैसे भ्रष्टता जीवन का अंग बन गई है, वैसे ही आलोचना करना और सुनना, पर फिर भी भ्रष्ट का भ्रष्ट रहना जीवन की स्वाभाविकता है. श्री गोपाल आचार्य का उपन्यास 'न्यायतीर्थ' भारतीय न्यायालयों व कचहरियों के असली रूप को सामने रखता है. लेखक की ज़िन्दगी इस पेशे से सीधी सम्बन्धित रही है इसलिए वह जानता है कि किस तरह से वकील अदालत चलाते हैं, मुवक्किलों को किस तरह से लूट लिया जाता है, और किस तरह का न्याय न्यायाधीशों द्वारा बांटा जाता है. उपन्यास की पृष्ठभूमि अनुभवों से ली गई है इसलिए यथार्थ कड़वा, पर विश्वसनीय चित्र पाठक के सामने उपस्थित होता है.

एक प्रश्न उपन्यास विधा के सम्बन्ध में उठता है. क्या उपन्यास में किसी कथासूत्र का होना जरूरी तौर पर आवश्यक है ? और क्या यह भी जरूरी है कि उस कथा का कोई नायक हो ही, नायिका हो ही ? यह प्रश्न इसलिए जरूरी है क्यों कि न्यायतीर्थ की समीक्षा डा० रामदरश मिश्र ने भी की है और डा० महीपसिंह ने भी और सौभाग्य या दुर्भाग्य से दोनों आलोचक होने के साथ-साथ किसी न किसी हद तक कथा साहित्य के सृजन-पक्ष से सम्बन्धित हैं. डा० रामदरश तो उपन्यासकार हैं, उन्हें यह गलत न हो

*सूर्य प्रकाशन मंदिर द्वारा प्रकाशित मू. १२)५० पृ. सं. ३७२

कि कोई उपन्यास किस केन्द्रीय दृष्टि को लेकर लिखा गया है, और कि लेखक का किसी उपन्यास को लिखने में क्या उद्देश्य है, ऐसा मानने को मन नहीं चाहता पर उनकी ओर डा० महीपसिंह की समीक्षाएं देखकर ऐसा मानना पड़ गया.

'न्यायतीर्थ' नाम ही उपन्यास के उद्देश्य को इंगित कर देता है. उपन्यासकार न्यायालयों को अपना केन्द्र बनाना चाहता है न कि किसी विशिष्ट व्यक्ति को जो कथा-सूत्र को चलाये 'तीर्थ' शब्द व्यंग्य के लिये जुड़ा है, जो आजकल तीर्थ स्थानों पर होता है, वही कचहरियों मे होता है-यानी जैसे धार्मिक तीर्थ स्थान भ्रष्ट हैं वैसे ही न्यायालय भी. न तीर्थ स्थानों में धर्म लाभ होता है न आज की कचहरियों मे वास्तविक न्याय की प्राप्ति. न्यायतीर्थ उपन्यास कथानक प्रधान अथवा चरित्र प्रधान उपन्यास नहीं है, और उसमे इन दो चीज़ों को ढूंढना और फिर उनकी अनुपस्थिति मे उपन्यास को खामियों भरा मानना समीक्षक की समझ पर प्रश्न चिन्ह लगता है. न्यायतीर्थ उपन्यास मे श्री गोपाल आचार्य ने न्यायालय और उनके अन्तर्गत की कचहरियों को केन्द्र बनाया है अतः यहाँ कचहरियाँ मुख्य वर्ण्य-विषय हैं, और समाज के विभिन्न-चित्र इनके माध्यम से ही सामने आते हैं न्यायतीर्थ की रचना को समझने के लिए उस छत्ते को समझना होगा जिसके मुख्य छल्ले से शाखियां जुड़ी रहती हैं. इसलिए जहां कचहरियों में बड़े-छोटे, पुराने-नये वकील दीखते हैं, वहाँ तरह-तरह के मुवक्किल, मुकदमें, पेशकार, मुन्शी, जज, दलाल वगैरह दीखते हैं. यह सब क्यों कि समाज से आते हैं अत. अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करते हैं. सारी समस्याएं, चाहे वह किसी राजनीतिक जुलूस में किराये पर लाए गए प्रदर्शनकारियों से सम्बंधित हो, चाहे मधु जैसी सोसायटी गर्ल का सरोज जैसे व्यक्ति से दस्तवेज लिखवाना, चौधरियों का गांव की छोटी-मोटी बातों पर मुकदमें लाना, लता और सुरेश की शादी का विच्छेदन तक पहुंचना, विद्यार्थियों के जुलूस पर पुलिस का लाठी बरसाना. आदि यह सब किसी न किसी वकील या मुकदमें के माध्यम से उपन्यास में उपस्थित होती हैं. वर्तमान जीवन को उतारने के लिए उपन्यासकार ने अपनी दृष्टि को हवाई अड्डे के ऊपर घूमने वाली सर्चलाइट की तरह घुमाया है इसलिये चाहे हर पक्ष सम्पूर्णता मे न आया हो पर अपने रूप को सब विसंगतियों के प्रस्तुत अवश्य करता है. आश्चर्य है डा० रामदरश मिश्र इस उपन्यास में सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं पाते. यहां तक कि वकीलों की जो लम्बी फहरिस्त इस उपन्यास से बन सकती है. प० सदमीदत्त, प० शिवदत्त, इन्द्रराज सिंह, लाला सुखदेव, बुद्धदेव, कमला प्रसाद, राधारमण, ट्रेनिंग मि० चोपरा, मि० गोपाल आदि, वह अपने व्यक्तित्व मे भिन्न है. वकील होते हुए भी प० सदमीदत्त, नये ट्रीनीज, नये वकल युवा प्रतीक मे भी फरक है. यह सब अलग चरित्र है, जिस तरह दलाल, पेशकार, मुवक्किल, मिस्टर आर सी. गुप्ता जिन्होने (वकील उनके) बुद्धिविवश

मजिस्ट्रेट' की शिकायत करके उसका तबादला करवाया.

श्रीगोपाल आचार्य ने विद्यार्थियों के जुलूस पर होने वाले लाठी चार्ज के प्रसंग को लेकर पुरानी पीढ़ी के अफसरपरस्त वकील प० सदमीदत्त और नये वकील अशोक की टक्कर भी दिखा दी. नयी पीढ़ी क्या सोचती है वकालत के पेशे को लेकर वह अशोक के मुँह से कहलवाया गया है.

समाज का प्रतिनिधित्व तो हुआ ही है, बल्कि मेरी आपत्ति तो यह है कि इसमें इतने भिन्न रूपों के साथ और इतनी अधिकता से हुए हैं कि चित्र सर्र-सर करके आते निकल जाते हैं, इसलिए ऐसा लगता है कि उपन्यासकार घटनाओं और स्थितियों के कटिंग जोड़ रहा है.

डा. महीप सिंह ने मधु और सरोज को दुबारा उपन्यास में आ जाने की शिकायत की है (इसकी वजह यह भी है कि मधु अपनी चारित्रिक विशेषता से शुरू से नायिका होने का भ्रम पैदा करती है) और सुरेश व लता के प्रसग को "घुसपैठिये" की उपमा दी है. पर वह यह देखना भूल गये कि सुरेश अपने चरित्र को खराब बताने के लिए मधु और उसकी सहेलियां मिसेज इंजीनियर, मिसेज डाक्टर, मिसेज कंट्रेक्टर मिस रमन वगैरह का सहारा लेता है, और इस मुकदमे में भी वही ज्योति बाबू वकील हैं, जिन के पास मधु उपन्यास के प्रारम्भ होते ही गई थी. वह भी मुकदमा था यह भी मुकदमा ही था और उपन्यासकार मुकदमों से ही उपन्यास रचता है इसलिये यह 'घुसपैठ' नहीं है. कथा-कन्डीशन्ड समीक्षकों को घुसपैठ लगे तो इस पर उपन्यासकार का क्या वश ?

डा. महीप सिंह की एक आपत्ति उपन्यास के संदर्भ में ठीक है कि संवाद भाषण नुमा हैं जो बहुत अखरते हैं, यह भाषण एक तो आरोपित बन जाते है दूसरे चरित्र से उसकी स्वाभाविकता छीन लेते हैं. यदि श्रीगोपाल आचार्य इस तरफ से संयम बरतते तो ज्यादा अच्छा होता. ऐसा नहीं है कि सम्वाद लिखने में वह ढीले हैं, बल्कि कहीं-कहीं तो छोटे और चुटिले संवाद ही उनकी विशेषता बन जाती है, पर ऐसा लगता है कि उनका आदर्शवादी हिस्सा कभी-कभी उछाल ले लेता और तभी उनके हाथ से संयम छूट जाता है. यह कमजोरी अनावश्यक पृष्ठ बढ़वा जाती है जो परिस्थिति के प्रभाव को भी छीनती है और पाठक को ऊबन भी देती है. उपन्यासकार यदि जरा सा संयम से लेता तो न्यायतीर्थ अपनी तरह का, अपने विषय का एक ही उपन्यास होता.

पुस्तक की छपाई, सफाई और टाइटिल बहुत अच्छा है.

—□—

वर्ष : ११ अंक : ३

सितम्बर ७२

( चिन्तन व सक्रिय सृजन का मासिक )

प्रारम्भ

# अनुक्रम

## वैचारिक निबन्ध



## कहानी



## कविता



## विवेचन



---

सम्पादक
हरीश भादानी

सम्पर्क
वातायन
महात्मा गांधी रोड
बीकानेर

शिक्षण संस्थाओं के लिये स्वीकृत
राज्य व केन्द्र के विज्ञापन के लिए स्वीकृत

सहयोग राशि
१५.०० वार्षिक

# लड़ाई के मैदान में लेखक

☐ कंचन कुमार

साहित्य कला किसी भी जमाने की राय को नापने का यन्त्र है. वर्ग-संघर्ष के क्षेत्र में जब कोई तब्दीली होती है तो वह उस मे तुरंत पकड़ा जाता है. किसानों की हथियार-बन्द लड़ाई की शुरुआत के बाद से हमारे यहां लेखन के क्षेत्र मे जो बदलाव आया, उसके असर को साफ-साफ देखा जा सकता है. लेखकों की ओर से निश्चिन्त रहने वाली सरकार को एकाएक चौकन्ना होना पड़ा. एकाएक मानों धमाका हुआ और लेखकों के एक हिस्से को 'ठीक' करने के लिए पुलिस को दौड़ाना पड़ा. जन-कवि सुब्बाराव पाणिग्राही तथा प्रगतिशील लेखक सरोज दत्त को पुलिसने मार डाला. बहुत सारे लेखक जेल मे डाले गए. उन पर मुकदमे चलाए गए. पंजाब की जेलों मे कई लेखक तथा सम्पादक अभी भी बन्द हैं और उन पर वहशीयाना जुल्म कायम है.

इस सरकारी चौकसी की वजह यह है कि समाज में चल रही क्रान्तिकारी लड़ाई से इन लेखकों ने नाता जोड़ा तथा समान दुश्मन के खिलाफ जनता के साथ मिलकर जिहाद बोला था. जनता से उनके सम्पर्क ने उनकी रचनाओं में वह ताकत भर दी जिसे बरदाश्त कर सकना सरकार के लिए सम्भव नहीं था और शोषण के विरुद्ध लेखकों की इस आवाज विस्फोट को कुचलने के लिए कदम उठाना पड़ा. अब सरकारी इरादा जन-संस्कृति को पूरी तरह खत्म तथा असंभव करना है. ताकि बुर्जुआ अखबारों, आकाशवाणी, फिल्म, टी वी तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के जरिए शोषक सत्ता के तमाम [illegible] बेरोकटोक अनर्गल झूठ का निरन्तर प्रचार कर सकें.

मगर प्रतिक्रियावादी लोग पत्थर हमेशा अपने पाँव तोड़ने के लिए ही उठाते हैं. जनता के उभार को वे जितनी बर्बरतापूर्वक दबाने की कोशिश करते हैं, उनके खिलाफ लड़ाई उतनी ही भड़क उठती है। लेखकों का दमन करने की कोशिश का भी यही नतीजा निकलेगा। लेखकों पर किया गया यह फासिस्ट हमला उन्हें सही दिशा में निर्णय लेने में मदद करेगा.

वैसे क्रान्तिकारियों के कत्लेआम तथा जनता के दमन को देखते हुए लेखक भी अब समझने लगे हैं कि सिर्फ लेखन के जरिए इस आदमखोर व्यवस्था को तोड़ा नहीं जा सकता। इस समझ को कार्यान्वित करने के लिए उन्हें मजदूर किसानों के साथ खड़े होकर उनकी क्रान्तिकारी लड़ाई में हिस्सा लेना होगा और अपनी हिस्सेदारी के जरिए ही वे उस नए साहित्य का सृजन कर सकेंगे जिस मे व्यापक पीड़ित जनता की आशा आकांक्षा प्रतिबिम्बित होगी.

आज दुनिया की ऐतिहासिक धारा यह है कि मुल्क आजादी चाहता है, राष्ट्र मुक्ति चाहता है और जनता क्रांति चाहती है. दुनिया के सभी हिस्सों की अप्रतिरोध्य ताकत यही है. जो लेखक कलाकार इस ऐतिहासिक धारा को नहीं समझता और आज भी कामू काफ्का की अंधेरी दुनिया में भटक रहा है, उसका साहित्य बासी और दिशाहीन होने के लिए मजबूर है. क्योंकि बदली हुई परिस्थिति के यथार्थ को पकड़ने में वह असमर्थ हो रहा है.

इसके विपरीत जो लेखक मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ-त्से-तुङ्ग विचारधारा के कुतुबनुमा से दिशा संकेत ले रहा है, उसकी विश्व दृष्टि साफ है—क्योंकि यह उसे वास्तविकता को देखने तथा सही ढंग से विश्लेषण करने में मदद करता है फिर वह पाता है कि मानव जाति की मुक्ति का यही एक मात्र रास्ता है. इसीलिए सर्वहारा वर्ग से जुझारू एकता कायम कर इस आधी-सामन्ती आधी-उपनिवेशी व्यवस्था तथा उसके पालतू कुत्तों के खिलाफ लड़ते हुए अपनी रचना-प्रक्रिया के जरिए लेखक उस सर्वहारा साहित्य को रच सकता है, जिसकी कोई मिसाल हमारे साहित्य में नहीं है.

साहित्य में चल रहे 'वादों' से हमें नहीं घबराना चाहिए. राजनीति के क्षेत्र में जैसे विभिन्न वर्गों के हित की रक्षा के लिए अलग-अलग पार्टियां हैं— वैसे ही साहित्य के क्षेत्र में 'वाद' हैं, जैसे-जैसे लड़ाई तेज होती जाएगी ताकतों का भी ध्रुवीकरण होने लगेगा और अन्त में दो ही मोर्चे रह जाएंगे. क्योंकि मूलतः दुनिया दो खेमों मे बंटी हुई है— एक समाजवादी खेमा है और दूसरा पूंजीवादी खेमा. सर्वहारा वर्ग का लेखक अपने को सीधा मार्क्सवादी लेखक कहता हैं. मगर पूंजीवाद के खिलाफ जनता की नफरत इतनी गहरी हो चुकी है कि घोर पूंजीवादी लेखक भी अपने को पूंजीवादी लेखक कहने की हिम्मत नहीं रखता. वह अपनी जन-विरोधी प्रतिबद्धता को छिपाने के लिए राहों का

अन्वेषी, प्रप्रतिबद्ध, प्राजाद दुनिया का लेखक, मुक्त लेखक, राष्ट्रवादी मानव मूल्यों का अन्वेषी आदि तरह तरह के बिल्ले लगाकर जनता के सामने आता है. बिल्ला कोई भी हो मतलब एक है—साम्राज्यवादियों की दलाली करना, साम्यवाद के खिलाफ जहर उगलना, जनता के खिलाफ लड़ाई मे शामिल होना.

साम्राज्यवादी और पूंजीवादी खेमों की लड़ाई एक दीर्घकालीन लड़ाई है. इस लड़ाई में समय-समय पर तेजीमन्दी होती रहेगी. महनतकश वर्ग की लड़ाई का यह रास्ता भले ही काफी लम्बा, तकलीफदेह और कठिन क्यों न हो, मगर अन्त में क्रांति प्रतिक्रान्ति को पछाड़ देगी. इसीलिए हमे जूझने के लिए हिम्मत करना है, जीतने के लिए हिम्मत करना है.

यह जमाना प्रतिक्रियावादियों से डरने का नहीं उनके खिलाफ जमकर लड़ने का है. सर्वहारा लेखकों को सारी ताकत केन्द्रित करके प्रतिक्रियावादी तथा संशोधनवादी लेखकों के लेखन के खिलाफ हमला करना चाहिए. क्योंकि उनका उद्देश्य यथास्थिति को कायम रखना है.

आज हमारे सर्वहारा लेखकों की फौज कितनी भी कमजोर क्यों न हो सचाई के लिए हमारी हमलावर लड़ाई, जनता से हमारा एका, हमारी ताकत को बढ़ाने के लिए मजबूर है इसीलिए हमारे लेखन की ताकत का दमन या उसका खात्मा करने की ताकत साम्राज्यवाद संशोधनवाद या प्रतिक्रियावाद के पास नहीं है.

जीवन तथा रचनाओं मे सर्वहारा वर्ग के सोचविचार, भावनाओं व जोश में भरकर, लड़ाकू जीवन-दर्शन के साथ हमें सबसे पहले क्रान्तिकारी बनना है तथा अन्त तक बने रहना है. तभी हम सचाई को स्थापित करने की प्रेरणा का सम्मेलन कर सकेंगे तभी हमारे लिए क्रान्तिकारी यथार्थ तथा क्रान्तिकारी कल्पना का मेल बैठाना सभव होगा जिन लेखकों ने इस तालमेल को संभव किया, उसके उदाहरण सुब्बाराव पाणिग्राही तथा सरोज दत्त थे. उन्होंने न केवल क्रान्तिकारी यथार्थ तथा क्रान्तिकारी कल्पना का मेल बैठाया, बल्कि उस नयी दुनिया को साकार करने के लिए, सतर क दशक को मुक्ति के दशक में बदलने के लिए लड़ते हुए शहीद हुए. उन्होंने हमें बताया कि सर्वहारा लेखक की जगह ड्राईंगरूम नहीं है बल्कि लड़ाई का मैदान है. उनकी वीरतापूर्ण लड़ाई की याद लड़ाकू जनता में बराबर बनी रहेगी और नयी पीढ़ी के बीच से उनके उठाए हुए झण्डे को आगे ले जाने के लिए लोग बराबर कतारों मे शामिल होते रहेंगे, जिससे क्रान्तिकारियों तथा सर्वहारा लेखकों की फौज खड़ी हो सकेगी जो आगे चलकर हमारे 'नए समाज' के निर्माण के अधूरे स्वप्न को पूरा करेगी

सर्वहारा लेखन का मामला महज एक पद्धति या तकनीक का मामला नहीं है वर्ग-दृष्टि से यथार्थ जीवन को समझना और उस विषय-वस्तु को ही स्थापित करने के लिए सबसे

जीवन्त तथा सबसे भौंडू तरीके से उसे प्रकाशित करने की पूरी प्रक्रिया ही कला-साहित्य के सृजन के पीछे काम करती है।

जब हम मार्क्सवादी नजरिया से आज के यथार्थ का विश्लेषण करेंगे तो क्रान्ति की प्रगति को सही सन्दर्भ में समझ सकेंगे. फिर हमारे लिए लक्ष्य तय करने में कोई दिक्कत नहीं होगी. हमारी रचनाएं व्यापक पीड़ित जनता यानी मजदूर, किसान तथा मध्यवर्ग को एकजुट करने, लड़ाई में उनकी आस्था मजबूत करने, उसके राजनैतिक स्तर को ऊंचा उठाने, हैवान दुश्मन को बेनकाब करने तथा जनता की ताकत को बढ़ाने का काम करेगी. इस तरह हम सही माने मे क्रान्तिकारी मशीन का पुर्जा बन सकेंगे.

हमारे साहित्य के लिए तमाम पुराने मापदंड बेकार होंगे. उसके लिए किसी कहानी, कविता, उपन्यास, लेख या किसी विद्या के कला को जांचने के लिए यह देखना है कि ये कृतियां जनता को संगठित होने में मदद कर रही है या नहीं? यहां तक देखना है कि क्रान्तिकारी लड़ाई में जीत हासिल करने के लिए हथियार उठाने के लिए प्रेरित कर रही हैं या नहीं?

सर्वहारा साहित्य को जनता के दुश्मन हमेशा 'प्रचार' कहते आए हैं अमेरिकी लेखक अप्टन सिनक्लेयरने इस बात को साफ करते हुए कहा था 'सभी साहित्य प्रचार है'. ज्यों ही आप अपना साहित्य दूसरे को दे देते हैं वह प्रचार बन जाता है. घोर. व्यक्तिवादी रचना के लिए भी यह सही है. उससे बचने का एकमात्र रास्ता है. न लिखना या मुंह न खोलना चूंकि साहित्य मे आदमी के अन्दर तक पैठने की ताकत होती है, इसलिए उसे क्रान्ति के हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है.

जनता की क्रान्तिकारी लड़ाई सर्वहारा-साहित्य-कला का स्त्रोत है. इसीलिए सर्वहारा लेखकों के लिए उत्पादन की कमी कभी नहीं होगी. जनता की अपार रचनात्मकता उसके साहित्य को नए नए रंगों से भर देगी. मगर लेखकों को भाषा-शैली का ख्याल रखना चाहिए. क्योंकि यह तय है कि हर साहित्य प्रचार है, मगर हर प्रचार साहित्य नहीं है. चालू मुहावरों के बाहर यह एक सचाई है कि क्रान्ति को भी साहित्य की जरूरत है— महज इसलिए कि यह साहित्य है.

सर्वहारा साहित्य चूंकि मजदूर किसानों के लिए है—इसीलिए राजनीति की बात को कभी नहीं भूलना चाहिए. हमें साफ समझदारी होनी चाहिए कि हमारा साहित्यिक लक्ष्य सर्वहारा वर्ग की तानाशाही कायम करने की राजनीति से जुड़ा हुई है. क्योंकि अब तक हमारे मुल्क के अनेकानेक लेखक 'प्रगतिशील लेखक' का जामा पहन कर हर रंग के प्रतिक्रियावादी तथा संशोधनवादी सर्वहारा-विरोधी सिद्धान्त को कला साहित्य के क्षेत्र में स्थापित करने की कोशिश करते रहे हैं. उन में अधिकतर लोग आज चोला बदल कर

सत्ता या सेठों के वफादार नौकर बन गए हैं. बाक़ी लोग सोवियत रूस की सैर, मोटी तनख्वाह की नौकरी तथा दूसरे व्यापारों का ठेका-परमिट संभाल रहे हैं. कुछ लोग सी० आइ० ए० की सांस्कृतिक (?) संस्था कांग्रेस फार कलचरल फ्रीडम द्वारा आयोजित 'मुक्त-मेला' नुमा आयोजनों के 'मूल-गायक' बने हुए हैं.

जहां सैद्धान्तिक आधार मजबूत न हो वहां इस तरह के अवसरवादियों की बन आती है. हमें संगठित रूप से इस तरह के अवसरवादियों के खिलाफ लड़ते रहना चाहिए तथा सर्वहारा वर्ग के सैद्धान्तिक पक्ष को मजबूती के साथ लोगों के सामने रखना चाहिए. सिद्धान्त और प्रयोग के जरिए हम कला साहित्य सम्बन्धी बूर्ज्वा विचारों तथा उसकी सीमाओं को तोड़ सकेंगे. सर्वहारा साहित्य के नए विचार बूर्ज्वा साहित्य के पुराने घिसेपिटे विचारों को अवश्य पछाड़ देगा. सामाजिक विकास का यह नियम साहित्य के लिए भी लागू होगा. इतिहास के चक्र को लौटाया नहीं जा सकेगा. प्रतिक्रियावाद तथा संशोधनवाद खत्म होगा ही. क्रान्ति तथा क्रान्तिकारी साहित्य अनिवार्य रूप से विजय होगा ही, भले ही प्रतिक्रियावादी तथा संशोधनवादी उसे खत्म करने के लिए हर तरह के हथकंडे का इस्तेमाल क्यों न करें.

इसीलिए हम देख रहे हैं कि जनता पर तमाम दमन उत्पीड़न की ओर आंख बन्द करके संसदीय पार्टियों के नेतृत्व से शैतान से सुरक्षा खरीद लेने तथा बुद्धिजीवियों के या तो चुप हो जाने या सियारों की 'हुआं' में 'हुआं' मिलाने के बावजूद जनता का प्रतिरोध उठ खड़ा हो रहा है.

क्योंकि हम ऐसे ऐतिहासिक दौर से गुजर रहे हैं, जब संगठित फासिज्म का अंधकार अपनी जड़ें गहरे नहीं जमा सकती—जनता उसे खत्म करके ही रहेगी. इन बातों को समझने वाले सर्वहारा लेखकों तथा बुद्धिजीवियों को सामने आना होगा, हिम्मत के साथ व्यवस्था के हर ढोंग का पर्दाफाश करना होगा. इस हत्यारी व्यवस्था को खत्म करने के लिए उसके एकमात्र विकल्प की ओर बढ़ने के लिए जनता को प्रेरित करना होगा.

क्रान्तिकारियों के समानान्तर लेखक तथा बुद्धिजीवी अपनी सक्रिय भूमिका से त्रास की इस मानसिकता को तोड़ सकते हैं उसे लड़ाकू मानसिकता में बदल सकते हैं. अपने दस्ते के इस काम से डरे हुए लेखकों को भी हिम्मत लौट आएगी और देखते ही देखते सारे देश भर में लेखकों की एक जमात खड़ी हो जाएगी जो अपने को जनता की क्रान्तिकारी लड़ाई से सीधे जोड़ना शुरू करेंगे—तभी व्यापक ढंग से उस 'प्रतिरोध-साहित्य' की शुरुआत होगी जनता जिसका बहुत दिनों से इन्तजार कर रही है. ∧

# विश्व दृष्टि एवं साहित्यिक मूल्य*

△ ले. मोहन थम्पी

मार्क्सवादी आलोचना ने लेखक की सजगता से अपनायी गयी जटिल दृष्टि एवं उसके सृजन में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ के वस्तुवादी चित्रण से उभरती आदर्शवादी प्रवृत्ति के बीच तनाव की सम्भावना को हमेशा स्वीकारा है। इन पृष्ठों मे इस समस्या के प्रति मार्क्सवादी दृष्टि पर विचार करने का प्रयास किया गया है। इसके पहले भाग मे हम कुछ मुख्य मार्क्सवादी विचारको द्वारा इस समस्या की प्रकृति पर रखे गये विचारो का विवेचन करेंगे तथा दूसरे भाग मे हम यह जांच करेंगे कि किस सीमा तक इस तनाव को साहित्य-सृजन के संदर्भ मे प्रासंगिक मान्यता दी जा सकती है।

हमारे इस विवेचन का सबसे फलदायक पहल-बिन्दु स्वाभाविक रूप में ही ऐंगेल्स द्वारा बाल्ज़ाक पर रखे गये विचार एवं तॉलस्ताय पर लेनिन के लेख होंगे, जब हम तॉलस्ताय पर लेनिन तथा प्लेखनोव के विचारों की तुलना करते हैं, तभी हमारे सामने साहित्यिक समस्याओं के प्रति कुंठित सामाजिक दृष्टि की सीमाए तथा उसके खतरे स्पष्ट हो जाते हैं.

यह सर्वविदित है कि मार्क्स तथा ऐंगेल्स ने बाल्ज़ाक को क्रान्ति-उपरान्त फ्रेंच समाज के उसके औपन्यासिक अंकन के लिये उच्चतम मर्यादा दी है. मार्क्स ने लिखा है कि बाल्ज़ाक "वस्तुस्थिति की गहन ग्रहणशीलता के लिये साधारणतया उल्लेखनीय था."[1] ऐंगेल्स ने कहा है कि उन्होंने उस समय के फ्रेंच-समाज के बारे मे अन्य पेशेवर इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियो तथा क्रमबद्ध गणनाकारों इत्यादि से अधिक बाल्ज़ाक से जानकारी हासिल

की है।[2] ऐंगेल्स का तात्पर्य यह था कि यह उपन्यासकार फ्रेंच समाज के संक्रमण के सार-तत्व को अन्य सभी इतिहासकारों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक एवं सही तरीके से प्रस्तुत करने में सक्षम था.

ऐंगेल्स ने दिखाया कि बाल्ज़ाक राजनैतिक दृष्टि से पुरातनपन्थी था जिसकी सहानुभूति उस सामन्ती-कुलीनता के साथ थी जिस वर्ग का अन्त आवश्यम्भावी था, किन्तु उसने इस वर्ग के सदस्यों के चित्रण में "तिरस्कारी" व्यंग्यों तथा "तीखे" व्यंग्योक्तियों का व्यवहार किया है एवं अपने राजनैतिक विरोधी रिपब्लिकनों के प्रति अपनी आदर-भावना को नहीं छुपाया. ऐंगेल्स आगे लिखते हैं :—

"बाल्ज़ाक उस समय अपनी वर्गीय सहानुभूति तथा राजनैतिक पूर्वाग्रहों के विरुद्ध जाने के लिये बाध्य हो गया जब उसने अपनी प्रिय कुलीनता के पतन की अवश्यकता को महसूस किया, उन्हें दुर्भाग्यशाली लोगों के रूप में प्रस्तुत किया; कि उसने भविष्य के उस वास्तविक आदमी को पहचाना, समय विशेष के लिये मात्र जिसे ही पाया जा सकता था; कि मैं इसे यथार्थवाद की महान विजय मानता हूँ जो पुराने बाल्ज़ाक में सर्वोत्तम स्वरूप है."[3]

यह उल्लेख किया जाना चाहिये कि ऐंगेल्स ने बाल्ज़ाक के विषय में ये बातें उस समय कही थी, जब वे साहित्य में यथार्थवाद के स्वरूप का विवेचन कर रहे थे. लेखक के विचारों के बावजूद उसके मस्तिष्क में विद्यमान यथार्थवाद फिसल सकता है उन्होंने इसे एक स्पष्ट सम्भावना के रूप में स्वीकारा है कि एक लेखक में समय की परिवर्तनशील सच्चाई के प्रतिकूल प्रतिक्रियावादी शक्ति हो सकती है लेकिन फिर भी अपने सृजन में वह वास्तविक ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के अन्ततंत्व को दृढ़ ग्रहणशीलता को प्रस्फुटित कर सकता है.

राल्फ फाक्स तथा सिडनी फिन्केलस्टीन ने उपरोक्त सुबद्ध विधि द्वारा ही बाल्ज़ाक के सृजन का आकलन किया है. फाक्स ने बाल्ज़ाक को फ्रांस का साहित्यिक नैपोलियन कहा है क्योंकि "उसने सामन्ती आदर्शों को साहित्य में इतनी गहराई के साथ तोड़ा है जैसे उस महान सैनिक ने राजनीति में सामन्ती व्यवस्था को नष्ट किया था."[4] उसने बाल्ज़ाक की *"Comedie Humaine"* को उसके युग का एक क्रान्तिकारी चित्र बताया है."[5] क्रान्तिकारी, न सिर्फ लेखक के उद्देश्य की वजह से बल्कि उस यथार्थ से जिसके द्वारा उसने उस काल के आन्तरिक जीवन को चित्रित किया है. "[5] बाल्ज़ाक की यथार्थवादिता के स्रोतों को स्पष्ट करते हुए फिन्केलस्टीन कहते हैं कि इसका उत्स "आदर्शवाद एवं वास्तविक जीवन की गतिशीलता के बीच संघर्ष में निहित है. वह विशेषकर एक ऐसे व्यक्ति की अनुभूति है जो सामाजिक धाराओं एवं वस्तु जीवन के घर्षं-संघर्ष में संचित रूप से सक्षम हो."[6] इसके हस्ताक्षरों की महानता इस पथ की

सच्ची एवं गहन अभिव्यक्ति पर आधारित है, जिस पर "उसकी सामाजिक स्थिति परिस्थितियों आदतों की मानसिकता तथा व्यक्तित्व को त्याग, किसान तथा परिवार के सामाजिक सम्बन्धों के रूप तक परिवर्तित करते हुए भी किसान के आदर्शों का विरोध कर रही है."

बाल्ज़ाक पर गौर कर रहे मार्क्सवादी विचार साहित्य-आलोचना के एक मूल्यवान मानदण्ड को प्रस्तुत करते हैं. वह एक लेखक के सृजन का मूल्यांकन उसके व्यक्तिगत झुकाव, अनुभूति और उद्देश्य के आधार पर नहीं, बल्कि वस्तुगत सामाजिक यथार्थ के साथ उसके आदान-प्रदान तथा उसके कृतित्व में उभरने वाले सम्पूर्ण चित्र के आधार पर करते हैं. बाल्ज़ाक का आत्मगत प्रतिक्रियावादी झुकाव उसके लिये आधुनिक इतिहास के एक युगविशेष काल में फ्रेंच समाज की वस्तुगत गतिशीलता को पहचानने में बाधक नहीं हुआ। सच्चाई में उसकी पारदृष्टि उसकी अभिव्यक्ति में यथार्थ जिसकी सहानुभूति का अतिक्रमण करके मानवीय चरित्रों के रूप में समाज की वास्तविक गतिशीलता को अभिव्यक्त करने की क्षमता में उसकी महानता—ये सब उसकी कलात्मक महानता का आधार निर्माण करते हैं तथा यह प्रतिपादित कर सकते हैं कि प्रत्येक मामले में लेखक के प्रतिक्रियावादी विचार उसके सृजन के रचनात्मक मूल्य के साथ-साथ कायम रह सकते हैं ? क्या यह स्थिति आज भी उतनी ही मूल्यवान है जब सामाजिक वास्तविकता का यथार्थ चित्रण मानव इतिहास के पथ को परिवर्तन करने के लिये निरन्तर संघर्षरत मेहनतकश जमात से अधिक से अधिक सचेत जुड़ाव की मांग करता है ? इस स्थिति की पूर्ण-स्वीकृति क्या यह नहीं दर्शाती कि लेखक की दृष्टि, उसके अन्तिम विश्लेषण तक उसके सृजन की साहित्यिक विशिष्टता के आकलन में अप्रासंगिक है ?

इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रयास के पहले हमें लेनिन तथा प्लेखनोव द्वारा तॉलस्ताय पर रखे गये समानान्तर विचारों का विवेचन कर लेना चाहिये. तॉलस्ताय की गम्भीरता का लेनिन द्वारा आकलन, विशेषकर इस महान उपन्यासकार पर व्यक्त किये गये प्लेखनोव के असंयमी घातक विचारों को मद्देनजर रखते हुए एक लेखक के सृजन में प्रतिबिम्बित सम्पूर्ण सच्चाई की तथा उसकी साहित्यिक विशिष्टता में उसकी विश्वदृष्टि की महत्ता के अंश को खोज निकालने की आवश्यकता को पुष्ट करता है.

प्लेखनोव, विचारक तॉलस्ताय जिनके साथ वह "अनबना" अनुभव करते हैं, तथा कलाकार तॉलस्ताय जिनके साथ उन्हें "सुखद अनुभूति" होती है, में अन्तर करते हैं. उन्होंने अपने शक्तिशाली आलोचकीय डन्डे को तॉलस्ताय के ईसाइ धर्म के "बुराई मत रोको" वाले आदर्श पर केन्द्रित पाखण्डी, मिथ्या, नैतिक व्यवस्था की ओर मोड़ दिया. अपने "कला और सामाजिक जीवन" तथा तॉलस्ताय पर लिखे निबन्ध,दोनों में ही प्लेखनोव ने कलाकार के वर्गीय-उत्स को उसके सृजन के मूल्य के साथ उलझाकर एक कुत्सित

समाजशास्त्रीय भूल भी है. उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग में पश्चिमी युरोप का पूंजीवाद पतनोन्मुख हो गया; इसी से प्लेखनोव इस निर्णय पर पहुचते हैं कि इसीलिए इस काल की चित्रकारी तथा साहित्य निश्चित रूप से पतनशील होगा. ' इस समय का रूसी साहित्य पतनोन्मुख कुलीनता से पनपा एवं उसीके द्वारा भोगा गया था. इसीलिये उस पर पतित होने का आरोप लगाया गया. तॉलस्ताय 'ऊपर से नीचे तक" रईस था, इसीलिये यथार्थ मे उसके सम्बन्ध पर कुछ भी कहना, सीधे तौर पर हास्यास्पद ही होगा[8] यह सच्चाई है कि प्लेखनोव ने उन प्रतिक्रियावादी तथा उदारतावादी सिद्धान्तकारो की तॉलस्ताय को एक नया "ईसा", उदारवादी, मानवीकृत इसाई नीति के नये देवदूत के रूप मे स्थापित करने के प्रयासों को गहरी ठेस पहुचायी. किन्तु वे तॉलस्ताय के सृजन के सम्पूर्ण चित्र से उभरती उसकी विश्वदृष्टि का गहन विश्लेषण करने में असफल होगये. यह कार्य लेनिन ने सम्पन्न किया.

लेनिन ने तालस्ताय को रूसी जनतान्त्रिक क्रान्ति, जिसे खुद उपन्यासकार समझने में असफल रहा, के दर्पण के रूप में देखा. एक ओर जब प्लेखनोव ने यह कहा कि तालस्ताय ने अपने को समय से दूर कर लिया, तो ठीक इसके विपरीत लेनिन ने यह दिखाया कि किस तरह वे गहराई एवं उत्कण्ठा के साथ समसामयिक समस्याओ से जुडे हुए थे. बावजूद इसके कि तालस्ताय द्वारा प्रस्तुत किये गये हल अति काल्पनिक थे, उन्होने उन "शापित प्रश्नो" को नजरन्दाज नही किया जो रूसी क्रांतिकारी बौद्धिक पीढी के लिए जनतांत्रिक क्रांति की तैयारी के काल में पीड़ादायक थे तालस्ताय ने 'आश्चर्यजनक दृढ़ता के साथ सम्पूर्ण प्रथम क्रान्ति के ऐतिहासिक स्वरूप', उसकी शक्ति तथा कमजोरी को आत्मसात किया.[9]

जब प्लेखनोव ने तालस्ताय में सिर्फ रईसी देखी तो लेनिन ने यह दिखाया कि किस तरह इस महान लेखक ने अपने जन्म तथा उच्चावस्था की परिस्थितियो का अतिक्रमण करके अपने को किसान जनता के साथ जोड़ा. "तालस्ताय रूप मे पनप रही बुर्जुआ क्रान्ति के वक्त लाखों रूसी किसानों के विचारों तथा सवेगो के मुखपात्र के रूप में महान है."[10] तालस्ताय की आलोचना मे उत्पन्न तीव्र शक्तिशाली भावावेग पतनशील,दुर्बल तथा भ्रष्ट कुलीनता का परिणाम नहीं हो सकता. यह सिर्फ उसी चेतना से सम्भव हो सकता है जो पूरी तरह से धीरे-धीरे क्रांतिकारी शक्ति संचित कर रही रूसी किसान जनता की उत्तेजना तथा क्रोध से घुल-मिल गयी हो.

जब हम लेखक की दृष्टि में अन्तर्द्वन्द्वों पर विवेचन करते हैं तो यह आवश्यक है कि इन द्वन्द्वों के स्रोतो को समाज मे विद्यमान वस्तुवादी द्वन्द्वो मे खोजा जाय. लेनिन की निम्न सूचक उक्ति लेखक की दृष्टि के अन्तर्द्वद्वो के विश्लेषण में वैदिक मूल्य रखती है. "तॉलस्ताय की दृष्टि मे अतंद्वंद्व उसकी अकेले की दृष्टि में प्राकृतिक द्वंद्व के तौर पर

नहीं है, बल्कि यह अत्यधिक जटिल, द्वान्द्विक स्थितियों, सामाजिक प्रभावों तथा ऐतिहासिक परम्पराओं, जो सुधार के बाद तथा क्रान्ति के पहले के युग के रूसी समाज के विभिन्न वर्गों तथा हिस्सों के मनोविज्ञान को गठित किया करती थी, का प्रतिबिम्ब है." 11

बालजाक मे तनाव उसकी प्रतिक्रियावादी सहानुभूति तथा यथार्थवादी दृष्टि के बीच था. तॉलस्ताय मे तनाव की प्रकृति भिन्न है. उसकी सहानुभूति पूरी तरह से एवं तीव्रता के साथ किसान जनता के साथ थी. किन्तु उसके द्वारा सुझाये गये हल, जिनकी उसने वकालत की थी, किसान जनता के सच्चे स्वार्थों के प्रतिकूल थे तथा उनकी मुक्ति, जिसकी उसे उत्कट अभिलाषा थी, उसके द्वारा सुझाये गये तरीकों को अपना कर कभी नहीं पायी जा सकती थी. उसके सच्चे मानवतावाद तथा काल्पनिक हलों जो समय की क्रान्तिकारी आवश्यकता के अनुसार नहीं थे, के बीच का यह तनाव दरअसल उसके उस किसान जनता से सीधे जुड़ाव का भी परिणाम था जो खुदभी अनुभव-शून्यता एवं रहस्यवादिता से पूरी तरह स्वतंत्र नहीं थी. इतिहास के प्रति उसकी इस आदर्शवादी धार्मिक दृष्टि ने उसे सर्वहारा की क्रान्तिकारी शक्ति को पहचानने मे बाधा सृष्टि की. किन्तु उसके द्वारा अपनाये गये किसानो के दृष्टिकोण ने शोषक वर्ग के प्रति उसकी निंदा को तीव्रता प्रदान की. इसी सीमा तक, उसने रूप मे वस्तुवादी क्रांतिकारी आन्दोलन की सेवा की.

इंगलैंड में रोल्फ फाक्स तथा आरनेल्ड केटल ने डिकन की गहनता पर परस्पर विरोधी विचार पेश किये हैं. फाक्स की आलोचना का मूल उसके इस संक्षिप्त वक्तव्य में समाहित है:—"उसने अपने युग का एक चित्र प्रस्तुत किया है, किन्तु उसने अपने पूरे युग को अभिव्यक्ति नहीं दी है." 12 उसका यह मानना है कि डिकन अपने समाज के क्रमिक धरातलों को 'तह मे चल रहे आदमी की प्रगतिशीलता के पतन" को नहीं देख सका. इसीलिये वो अपने समय की सच्ची शक्ति एव महान चरित्रों को नहीं पहचान सका. 13

आरनोल्ड केटल डिकन की दृष्टि एवं उसके सृजन के सामयिक यथार्थ से उभरती आदर्शवादी प्रवृत्ति में कोई द्वन्द्व नहीं पाते हैं. प्रमाण स्वरूप वह डिकन का एक भाषण उद्धृत करते हैं जहाँ डिकन ने कहा है, "जनता के शासन में मेरा विश्वास पूरी तरह से अतिसूक्ष्म है; जनता के शासन मे मेरा विश्वास असीम है." केटल, डिकन की दृष्टि के मूल तत्व को इसी प्रचलित प्रवृत्ति में पाते हैं. उसके अनुसार चारलोट ब्रोन्ट, मिसेज गास्केल, ठाकरे तथा जार्ज ईलियट का आलोचनात्मक यथार्थवाद इमीली ब्रोन्ट, डिकेन्स तथा हार्डी के परे हट कर "बुर्जुवा चेतना को गिरफ्त को ध्वस" नहीं करता. डिकन ने बुर्जुआ समाज के रास्तों का अतिक्रमण किया, "पेटी-बुर्जुआ बौद्धिक वर्ग को छोड कर जनता के अन्य प्रगतिशील तबके" की योधना के साथ निज को जोड़ लिया.

क्योंकि हाउस 'बुर्जुआ समाज की नींव पर आघात करता है" क्योंकि उसके द्वारा प्रचलित दृष्टिकोण के ग्रहण ने उसे राज्य शक्ति को वर्गीय प्रभुत्व के स्रोत के रूप मे पहचानने की क्षमता दी. उसके संलग्न बोध ने "उसे यथार्थ के उल्लेखनीय विराट क्षेत्र का सामना करते हुए उसे आत्मसात करके उथल देने की शक्ति प्रदान की, उसके यह यथार्थ ग्रहण का क्षेत्र निश्चित रूप से पिछले अन्य ब्रिटिश लेखकों से विशाल था. व्यापकता, जटिलता तथा संतुलन के कारण उसकी कला मे गहराई है.

हम देखते है कि जब केटल डिकन को कला को प्रचलित जटिल तथा गहन बता कर महान बताते हैं, उसी समय फास्ट उन पर सच्चाई को थोथी भावुकता का जामा पहना देने का आरोप लगाते हैं. दोनों इसे स्वीकारते हैं कि *वह अंतिम महान उपन्यासकार था;* किन्तु केटल उसके स्वरूप को उसके उन सम-सामयिकों, जो बुर्जुआ चेतना की दीवारों मे जकड़े हुए थे, की तुलना में उच्च स्थापित करते हैं, जबकि फास्ट, उसकी तुलना बाल्जाक तथा तालस्ताय से करते है जिन्होंने १९ वीं शताब्दी के प्रथम एवं द्वितीय भागों मे पूरे यूरोप के सृजन-साहित्य पर अधिकार जमा रखा था तथा उसकी महत्ता को स्वीकृति भी देते हैं.

स्वीफ्ट के सृजन पर रखे गये केटल के विचार, लेखक की अपने सृजन के सौन्दर्य मूल्य के प्रति दृष्टि से सम्बन्धित समस्याओं के प्रति केटल की दृष्टि में कई परस्पर विरोधी मान्यताओं को उद्घाटित करते हैं केटल ने स्वीफ्ट के व्यक्त विचारों को बचकाना बताकर निन्दा की है तथा उसकी अन्तर्दृष्टि को गहन बताकर उसकी प्रशंसा की है. "स्वीफ्ट के व्यक्त विचार (जैसे मनुष्य की प्रकृति पर रखे गये गम्भीर घनात्मक निर्णयों को लिया जाय) हमारे लिये स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं; किन्तु उसका जीवन बोध, सच्चा यथार्थ बोध इतना गहरा तथा तीव्र है कि उसके विचारों की असामान्यता कोई विशेष फर्क नहीं लाती, उसके दर्शन की व्यर्थता को उसके अवलोकन की व्यापकता समाप्त कर देती है." [18] किन्तु यह स्थिति, केटल की ही मौलिक दृष्टि के विपरीत है; "यदि हम किसी भी खास उपन्यास पर जो प्रश्नों को "जीवन्तता" प्रदान करता है, विचारें तो वह क्या है जो उसे व्यापकता देती है? हम यह देखेंगे कि व्यापकता उपन्यासकार की जीवन-दृष्टि से अविभाज्य है, यही निर्धारित करती है कि सजित प्रत्येक वाक्य मे क्या लिया गया है तथा क्या छोड़ दिया गया है." [19] इसे स्वीकारते हुए भी कि लेखक के सचेत दर्शन तथा उसकी कला के मूल्य में कोई सरल रेखा से सम्बन्ध नहीं हुआ करता, वह कहता है; "किन्तु तिस पर भी एक जीवन-दृष्टि वहां सदैव कायम रहती है जो उसके द्वारा रचित हर शब्द पर अपना प्रभाव डालती है तथा यह उसकी जीवन-दृष्टि ही है जो उसकी पुस्तक के स्वरूप की प्रकृति तथा गहनता निर्धारित किया करती है." [20]

क्रिस्टोफर काडवेल ने बर्नार्ड शा पर सर्वप्रथम आक्रमण करते हुए उनकी विश्व दृष्टि में

असमता के परिप्रेक्ष्य में नाटककार की चरित्रांकन की कला मे कमजोरी की ओर इंगित किया. काडवेल के अनुसार उसने ज्ञात तथा वस्तु के बीच के द्वान्द्विक सम्बन्धों को नजरन्दाज किया है तथा इसी वजह से वो सच्चाई को समझने मे असमर्थ भी रहे हैं. उसके टालमटोलवाद ( FABIANISM ) पर उसके नाटकों को कलात्मक मूल्य से रहित करने का आरोप लगाया गया है. "विचारों की एकाकी प्रमुखता पर आस्था के कारण उसके समस्त नाटक मानवीयता रहित हो गये हैं, क्योंकि वे आदमी को मात्र एक विचरणशील बौद्धिकता के रूप मे प्रस्तुत करते हैं." [21] शॉ के नाटकों में संघर्ष विवेक के धरातल पर पैदा होते हैं; "किसी भी टकराव का कभी कोई हल नहीं किया गया है—क्योंकि कैसे तर्क हमेशा के अपने उस सनातन विरोधी को सुलझा सकता है, जिसे सिर्फ कर्म से ही संश्लिष्ट किया जा सकता है" ? [22] काडवेल ने शॉ के बाद के नाटकों में दृढ़ता की कमी तथा टकरावों की व्यर्थता का नाटककार की बुर्जुआ समाज के पापों के प्रति सचेतनता तथा इन संघर्ष मे उत्पत्ति को समझने मे असफलता के बीच के तनाव के रूप मे पाया है.

सिडनी फिन्केलस्टीन ने दोस्तोवस्की के प्रघोषित "अस्तित्ववाद" तथा गूढ़ सामाजिक सच्चाइयों के प्रति उनकी यथार्थवादी समझदारी के बीच संघर्ष पाया है. उपन्यासकार की सचेत दृष्टि—उनकी धार्मिक अस्पष्टता, उदारवाद तथा समाजवाद के विरुद्ध उसका जिहाद—उसके समय के 'अपमानितों तथा दलितों' की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के प्रतिकूल थी, जिनके प्रति उसने गहरी सहानुभूति दर्शायी थी; किन्तु "उनके सृजन में सामाजिक यथार्थ तथा ऐतिहासिक सच्चाइयों की छाप है जो उनके किसी भी खोजे गये हल से आगे निकल जाती है" ( BROTHERS KARAMAZOV ) की दृष्टि के विश्लेषण द्वारा, फिन्केलस्टीन इस सामान्य निर्णय पर पहुंचते हैं कि कलाकार के मस्तिष्क की महानता उन जीवन्त सामाजिक सच्चाइयों की व्यापकता में समाहित है जिन्हें वो ग्रहण करके, आत्मसात् कर कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है. वह उसमें अधिक यथार्थ को नहीं समेट सकता जितने की उसकी विचारधारा अनुमति देती है; किन्तु यह सच्चाई उसकी सीमाबद्ध विचारधारा का अतिक्रमण करके ऐतिहासिक यथार्थ का एक हिस्सा बन सकती है." [23]

[ 2 ]

मार्क्सवादियों की यह सामान्य धारणा है कि लेखक द्वारा सचेतता में अपनाये गये विचारों की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति जरूरी नहीं है कि उसके सृजन के कलात्मक मूल्य के विपरीत जाय. ठीक इसका उलटा यह भी होगा कि कलाकार द्वारा सचेतनता मे अपनायी गयी प्रगतिशील दृष्टि उसके सृजन के कलात्मक मूल्य की कोई स्वतः गारंटी नहीं दिया करती. यदि ये दोनों वक्तव्य सही हैं तो यह कहा जा सकता है कि सिद्धान्ततः एक लेखक की

चेतन-दृष्टि उसके सृजन की महत्ता या महत्वहीनता से अप्रासंगिक हुआ करती है. मार्क्सवादी ऐसी सार्वभौम मान्यताओं को स्वीकारने के लिये कभी तैयार नहीं होंगे.
ऐसा लग सकता है कि संघर्ष, जिसकी मार्क्सवादी बातें किया करते हैं, लेखक की सचेतन दृष्टि तथा अचेतन मे अनुभूत सच्चाई के बीच होता है. बालजाक अपने समय के सामाजिक यथार्थ को बावजूद अपनी प्रतिक्रियावादी सचेत सहानुभूति के जिससे साधारण तौर पर उसकी दृष्टि ही नष्ट हो जानी चाहिये, पहचान लेते हैं। ऐसी दृष्टि एक लेखक को सूक्ष्म अनुभूति-ग्राही शक्ति प्रदान करती है जो उसकी अचेतन की गहरी तहों से क्रियाशील क्षमता ग्रहण किया करती है. हम अचेतन को किसी ऐसी रहस्यात्मक शक्ति से नहीं जोड़ते जो इसे मानवीय मनोविज्ञान के चेतन हिस्से की बिना मध्यस्थता के यथार्थ के सार-तत्व से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लेने की क्षमता दे देती है. सच्चाई यह है कि सचेतन मस्तिष्क ही अचेतन के तत्वों को खोज बाहर निकालने में प्रमुख एवं प्रभावशाली भूमिका अदा करता है. साहित्य सृजन लेखक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समाहित किये एक प्रक्रिया के रूप में ऐसा काम होता है जो चेतन-अचेतन दोनों हिस्सों से निचोड़े गये विभिन्न तत्वों के पारस्परिक प्रभावों तथा प्रतिक्रियाओं का फल हुआ करता है "यथार्थवाद की विजय" जिसकी ओर ऐंगेल्स ने संकेत किया है, तभी सम्भव है, जब लेखक इन विभिन्न तत्वों पर यथार्थ के प्रति अपनी ईमानदारी के आधार पर किसी प्रकार का नियन्त्रण कायम कर ले. विशिष्ट व्यक्तित्वों का यही पक्ष होता है, जिससे वह अपने संकीर्ण पूर्वाग्रहों का अतिक्रमण करके यथार्थ की वास्तविक गतिशीलता को उसके वास्तविक रूप में, न कि इच्छित रूप में, पहचानने की क्षमता रखता है.
एक मनुष्य की विश्व-दृष्टि प्रकृति, सामाजिक सम्बन्धों, राजनीति, कला, धर्म इत्यादि पर उसके विचारों एवं दृष्टि का समग्रण हुआ करती है. इन विचारों तथा दृष्टि का संयोजन कमोबेश बौद्धिक यथार्थ से तथा कमोबेश भावुक-गहनता के मिश्रण से हो सकता है. इस दृष्टि का मूल तत्व उसके दार्शनिक आधार द्वारा निर्मित होता है जो अन्ततः वैज्ञानिक भौतिकवाद या मार्क्सवाद की विभिन्न धाराओं में बदल सकता है. यह दार्शनिक मूल-तत्व मनुष्य की दृष्टि के समस्त पक्षों पर निर्णायक प्रभाव डालता है. विज्ञानों की उन्नतियां भी मानव इतिहास की प्रगति के साथ विश्व दृष्टि के कई हिस्सों के तत्वों का अन्वेषण करती है.
हर समाज मे आन्तरिक अस्थिरताओं से मुक्त दृष्टि निर्माण की तीव्र बौद्धिक प्रचेष्टाएं आवश्यक हैं. इन प्रचेष्टाओं में सफलता मात्र व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं किया करती; वैज्ञानिक परिस्थितियां भी व्यक्ति की विश्व-दृष्टि मे समाहित प्रतिकूलताओं को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया करती है. वर्ग समाज में शक्तिशाली शासक वर्ग कई "विचारधाराएं"—झूटी चेतना की व्यवस्थाओं—का निर्माण किया करते हैं जो यथार्थ को भारी-भरकम कुटिल मुहावरों तथा धारणाओं के बोझ दोपन कर दिया

करती हैं. ये "विचार-धाराएँ" मानव मस्तिष्क पर सच्चाई के प्रतिबिम्बन में हेर-फेर करने की प्रक्रिया के रूप में प्रभाव डालती हैं. लेकिन सम्पूर्ण मानव इतिहास में दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों ने कठिन प्रयोगों एवं धारणाओं द्वारा यथार्थ के विभिन्न स्वरूपों को समझने के उद्देश्य से अपने चारों ओर के कुहासे के आवरणों को भेदने के प्रयास किये हैं. यह एक लगातार प्रक्रिया है तथा साथ ही मनुष्य जाति की बौद्धिक प्रगति का आधार भी. इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को उस समय और भी अधिक प्रोत्साहन मिलता है जब प्रभावशाली वर्ग के स्वार्थ मनुष्य जाति के उन्नतिशील उत्पादक शक्ति वाले हिस्से—मानव अस्तित्व के भौतिक आधार—के साथ एकाकार हो जाते हैं.

यूरोप में १६ वीं शताब्दी—तथाकथित नवजागरण के युग—में की दार्शनिक एवं साहित्यिक उपलब्धियां बुर्जुआ तथा उनके प्रतिनिधियों की पादरियों के प्रभुत्व को समाप्त कर तर्क को स्थापित करने में प्राप्त सफलता को दर्शाती है. किन्तु जब बुर्जुआ व्यवस्था के अंतर्द्वन्द्व बढ़ते-बढ़ते बुर्जुआओं के खुद के नियन्त्रण से बाहर होने लगते हैं तो उनके द्वारा विज्ञान पर सन्देह करने के प्रयास परिलक्षित होते हैं. यह दार्शनिक नवजागरण नहीं, धार्मिक व्यग्रता है; तर्क के स्थान पर हमारे पास जादुई-व्यापार ( MIRACLE MONGERING ) हैं.

बाद में सर्वहारा के इस ऐतिहासिक कार्य के प्रति सचेत हो जाने से, जिसे मार्क्सवाद का ज्ञान इंगित करता है, एक सुगठित वैज्ञानिक विश्व दृष्टि की प्राप्ति की सम्भावनाएँ बढ़ गयी हैं. इस वर्ग के पास समस्त शोषण को समाप्त करने के भौतिक साधन उपलब्ध हैं. इस वर्ग की मुक्ति की शर्तें सम्पूर्ण मानव जाति की मुक्ति की शर्तें हैं. इसे विवेक, विज्ञान तथा यथार्थ की आवश्यकता है; क्योंकि विवेक, विज्ञान तथा यथार्थ ही इसे मुक्ति प्रदान कर सकते हैं. किन्तु सर्वहारा तथा उसके मित्रों तक को भी एक सुगठित विश्व दृष्टि की तीव्र आवश्यकता का सम्पूर्ण अनुभव सिर्फ वर्ग-समाज में ही सम्भव हो सकता है. किन्तु इसमें सर्वहारा क्रान्ति के आड़े-तिरछे रास्ते, बुर्जुआ चेतना के जमे हुए विकार, तथा पारम्परिक "विचार-धाराएँ" जिनकी जड़ें सामाजिक चेतना में गहराई से व्याप्त हैं, बाधा सृष्टि किया करती हैं.

बहुत से लेखकों, जिनमें महानतम लेखक भी शामिल हैं, की दृष्टि आन्तरिक प्रतिकूलताओं से उधार ली गयी होती है. अवैज्ञानिक गठन, अन्ध-विश्वास, रूढ़िग्रस्तता, प्रतिक्रियावादी सहानुभूति तथा युतोपियाई भ्रम—ये सभी यथार्थ के तत्त्वों में मिश्रित हो जाते हैं. इस विलक्षण मिश्रण के मिथ्या तथा प्रतिकूलताओं के दो स्रोत होते हैं : समाज के वस्तुगत द्वन्द्व तथा जन्म, शिक्षा, असंख्य असंभावित घटनाएँ, बौद्धिक प्रभाव तथा सामाजिक प्रक्रिया में लेखक की भूमिका जैसे कारण.

एक लेखक की दृष्टि तथा उसके सृजन के कलात्मक मूल्य में सम्बन्ध की सरलीकृत

व्याख्या की सम्भावनाएं लेखक के बौद्धिक एवं भाव संसार को गठित करने वाले तत्वों को जटिलता के द्वारा ही समाप्त हो जाती है. लेखक का बोध-तत्व मनुष्य के अन्तंजगत में विचरण करता है जहां उसे असख्य अनखोजी स्थितियां मिलती हैं. उसे सिर्फ राजनीति में समाहित नहीं किया जा सकता. एक निपुण समाज-शास्त्री, सामाजिक यथार्थ को किसी व्यापक गठन में समाहित कर सकता है जो बहुत सीमा तक सामाजिक प्रक्रिया में क्रियाशील शक्तियों की अन्तर्क्रियाओं का उपयुक्त स्वरूप पेश करता है. मानव इतिहास के प्रवाह से हटकर वह एक-विशेष प्रकार के सामाजिक-गठन पर विचार करता है. किन्तु लेखक, व्यक्ति के अन्तंजगत में एक विशेष सामाजिक गठन के प्रवाह के परिप्रेक्ष्य में विचरण करता है. किन्तु अन्वेषण के इस क्षेत्र में इतनी अधिक अनिश्चितताएं तथा परस्पर विरोधी स्थितियां हैं कि इसमे कोई बहुत आश्चर्य की बात नहीं है कि बहुत महान लेखक भी पूरी सम्पूर्णता के साथ भौतिकता पर अधिकार कायम करने मे सफलता न पा सके. उसकी बोधता का निर्माण करने वाली क्रियाए निश्चित रूप में सामाजिक यथार्थ में देखने-परखने की उसकी शक्ति पर प्रभाव डालती है. साहित्य में बाह्य, यथार्थ आत्मगत बोधता से छनता है. छनने की यह क्रिया हमेशा सफाई तथा स्पष्टता वस्तुतीकरण की नहीं हुआ करती. इस छानक-पत्र में जमा हुआ मैल निश्चित रूप में निथारे गये पदार्थ, साहित्य-सृजन में मिश्रित होता है.

यह सही है कि हम जिसका आकलन करते हैं वह छनित पदार्थ ही हुआ करता है न कि छानक पत्र. फिर भी व्याख्या तथा विश्लेषण की प्रक्रिया मे एक लेखक की दृष्टि का उचित ज्ञान बहुत मूल्यवान हुआ करता है. बालजाक पर विचार करते हुए हमने यह प्रश्न उठाया कि क्या प्रतिक्रियावादी सहानुभूति तथा विचार, रचनात्मक साहित्यिक-मूल्य के साथ-साथ कायम रह सकेंगे. इस प्रश्न पर सामान्य स्वीकृति या अस्वीकृति कोई अर्थ नहीं रखती: आलोचक को लेखक का विश्लेषण सम्पूर्णतः उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करना चाहिये. विचारों की कुछ प्रतिक्रियावादी व्यवस्थाए पूरी तरह से साहित्य सृजन की प्रवृत्ति मात्र की ही शत्रु हुआ करती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हिटलर की जर्मनी से बड़ी संख्या में जर्मन लेखकों द्वारा देश छोड़कर भागना है. इसे स्वीकार, कि विगत समय में कई-लेखकों ने बावजूद अपने- प्रतिक्रियावादी विचारों के महत्वपूर्ण साहित्य-सृजन किया है, का अर्थ इस सिफारिश के रूप में नहीं लगाया जा सकता कि आज भी लेखकों को प्रतिक्रियावादी विचार रखने चाहिए. इसी प्रकार इस सच्चाई का भी, कि किसान-समझदारी के तॉलस्ताय ने प्रथम रूसी क्रांति को प्रतिबिम्बित किया था, यह अर्थ नहीं होता कि वर्तमान स्थिति में मानव जीवन स्तर मे गुणात्मक प्रगति लाने के लिये संघर्षरत सामाजिक शक्तियों से सचेत रूप मे जुड़े दिमाग की वैज्ञानिक समझदारी समाजवादी क्रांति को प्रतिबिम्बित करने के लिये अनावश्यक है. मनुष्य अपने ऐतिहासिक अनुभवों पर जितनी अधिक शक्ति अर्जित करता है, उस शक्ति का व्यवहार करने के

लिये उतनी ही अधिक सचेतनता भी जरूरी है.

लेखक के विचारों को उसके सृजन पर गहनता से विचार करने के नाम पर नजरन्दाज करना, मार्क्सवादी आलोचना की विधि से बाहर की बात है. कैसे हम तॉलस्ताय की नेपोलियन की व्याख्या (WAR AND PEACE) में प्रस्तुत इतिहास के प्रति लेखक के विचारों को बिना समझे कर सकते हैं? कला सृजन से अलग—निबन्ध, डायरी, पत्रों इत्यादि में—व्यक्त विचारों तथा चरित्रों, स्थितियों, कल्पना, प्रतीकों इत्यादि में उभरे विचारों के बीच फर्क करना, आकलन की पूरी प्रक्रिया में एक जरूरी क्रिया है जिसमें विश्लेषण तथा व्याख्या आवश्यक प्राथमिक स्थिति के रूप में शामिल रहती हैं. लेखक के सौन्दर्य बोध तथा सामाजिक विचारों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए जो उसके सृजन में उसके विचारों से, जिनका उन पर अधिक प्रभाव नहीं भी हो सकता है, अधिक महत्वपूर्ण हुआ करते हैं. होमर का मूल्यांकन सिर्फ उसके महाकाव्यों के आधार पर किया जा सकता है. किन्तु यह तॉलस्ताय तथा हेनरी जेम्स जैसे लेखकों को, जिनके सामाजिक एवं सौन्दर्यात्मक विचार उपलब्ध हैं, विचारणीय बनाने में उपलब्ध स्थितियों को त्यागने की सलाह नहीं देता. जीवन की हर चीज, लेखक को चक्की में अन्न के समान हुआ करती है. ठीक इसी तरह लेखक के विषय की हर जानकारी भी आलोचक की चक्की में अन्न हुआ करती है. इसका अर्थ यह नहीं है कि लेखक के विषय की समस्त बातें या उसके सभी विचार, उसके सृजन में समान प्रासंगिकता रखते हैं एवं उस हर प्रकृति का जिसका लेखक जीवन में विरोध करता है, उसकी सृजन प्रचेष्टाओं में समान महत्व होता है. यहीं पर आलोचक का निजी विवेचन उसकी क्षमता को उद्घाटित करता है. साहित्य सृजन का विश्लेषण करते वक्त, आलोचक को उन तत्वों को, जिनकी शक्ति के श्रोत वस्तुगत यथार्थ है, उनसे, जो गलत चेतना की उपज है, अलगाना होगा. ऐसे विश्लेषण के द्वारा ही आलोचक इन समस्त विभिन्न तत्वों की आपसी अन्तर्क्रिया तथा नाटकीय संघर्ष, विवरणात्मक विधि, चरित्रों, कल्पना के रचनात्मक स्वरूपों तथा सृजन कार्य के अन्य रूपों द्वारा इन्हें अभिव्यक्त करने के तरीकों के बीच पनपे तनाव के गुणात्मक स्वरूप का आकलन कर पायेगा. विश्लेषण एवं विवेचन की ऐसी विधि उन जटिल रास्तों को, जिसमें एक लेखक की विश्व-दृष्टि उसके सृजन को मूल्य दिया करती है, उद्घाटित करने का आधारभूत साधन है.

अनु: अरुण माहेश्वरी

# संदर्भ संकेत


1. Karl Marx and Frederick Engels, Literature and Art, Bombay, 1956, p. 120
2. Ibid, p. 37
3. Ibid, p, 38
4. Ralph Fox, The Novel and the people, Moscow, 1956, p 106.
5. Ibid, p. 105
6. Sidney Finkelstein, Art and Ideology, Political Affairs. July 1959, p. 39
7. Ibid, p. 41
8. G. V. Plekhanov, Kunst & Literatur, Berlin, 1955, p. 788.
9. V. I. Lenin, On Literature & Art, Moscow, 1967. p. 49
10. Ibid, p. 30
11. Ibid. p. 50
12. Ralph Fox Op. Cit. p. 100
13. Ibid. p. 97
14. Arnold Kettle, Dickens & the Popular Tradition. Zeitschrift fur Anglistik and Amerikanistik, 1961—3, p. 237.
15. Ibid, p. 231
16. Ibid, p. 231
17. Ibid, p. 250
18. Arnold Kettle, An introduction to English Novel, London, 1951, p. 20.
19. Ibid, p. 14
20. Ibid, p. 27
21. Christopher Caudwell, Studies in a Dying Culture, London. 1938, p. 5.
22. Ibid, p. 7
23. Sidney Finkelstein, Existentialism and Alienation in American Literature, New York, 1965, p. 49.
24. Ibid, p. 54


*"सोशल साइन्टिस्ट" 'अगस्त, ७२' के प्रथम अंक में प्रकाशित मोहन [illegible] के लेख "*World Outlook & Literary Value*" का हिन्दी अनुवाद.

# एक कविता

△ मंजुल उपाध्याय

चार अंगुलियां
ब्रिटिश सिंह चबा गया
पूरे हाथ को काला
घड़ियाल खाता है
अलबत्ता आदमी और कमीज़
या रबड़ के झोले में
कोई खास फर्क नहीं रह गया है
शहर की धुन्ध
और रक्तपात सब एकालाप है
लेकिन
जब तक मेरे कलेजे में धुकधुकी साबित है
मुझे कोई चबा नहीं सकता.

# आग

जुगमन्दिर तायल

आग लगकर रहेगी एक दिन जरूर
तुम बार-बार कहते हो
मैं भी बेचैनी से इन्तजार कर रहा हूं
उस दिन का
आग की चिनगारियों से डरने का
कोई वाजिब कारण मेरे पास नहीं है.

यह सच है कि आग मैंने कभी
सुलगते नहीं देखी है
कि किस तरह चिनगारियां उचटती हैं
और एक दूसरे से जुड़ती चली जाती हैं
कि किस तरह लपटें तेजी से लपकती हैं
और सबकुछ को धुएं में बदलती जाती हैं
मैंने सिर्फ उसके बारे में सुना भर है
या किताबों में पढ़ा है
इसलिए कई सवाल हैं मेरे मन में
आग के बारे में.

तुमसे पूछता हूं.

किस मौसम में आग लगने की संभावना
सबसे ज्यादा होती है          गर्मी में
या वर्षा के बाद उमस में
कौनसे ज्वलनशील पदार्थ
इस्तेमाल होते हैं
घरों में बने बारूद के पटाखे
या फैक्टरियों ढले लोहे के बम.

कौनसे हाथ होते हैं
पहली चिनगारी सुलगाने वाले
काली ग्रीस से सने खुरदरे पंजे
या धूल अटी अंगुलियां.
किस जगह आग तेजी से फैलती है
वन में, गहरे दरख्तों के नीचे छाये अंधेरे में
या शहर की बदबू भरी तंग गलियों के बीच

सच
आग लगने की कल्पना बहुत सुन्दर है .
बहुत रोमांचक

रोम खड़े हो जाते हैं
चमकीली लपटों का ध्यान कर
मगर यह बताओ
कैसे जलाती हैं लपटें त्वचा को
धीरे-धीरे चूमते हुए
या एकदम झुलसाकर
बुझ जाती है.

# आग के लफ्ज

—पारवेन्द्र शर्मा, चन्द्र

उसके हाथ में रक्त रंजित हंसिया था. उसकी ओढ़नी पर लगे खून के बेतरतीब धब्बे ऐसे लग रहे थे मानो किसी दीवार पर अचानक लाल छींटें मार दिये गये हो. उसका लहंगा काफी ऊंचा था जिससे उसकी गोरी धूलसनी पिंडलियां दिखायी दे रही थीं. पांवों में वह चांदी की मोटी-मोटी 'कड़ियां' पहने हुए थी पर वह नंगे पांव थी.

उसका चेहरा रूखी उदासी के रंग से पुता हुआ था. बड़ी-बड़ी आंखों में करुणा और तटस्थता का अजीब मिश्रण था, बिखरे घास की तरह रूखे बाल कानों की बालियों से उलझ हुए थे ललाट-गाल और ठोड़ी पर हरी बिन्दी गोदी हुई थी.

वह अभी हारी कोई चंडिका लग रही थी. उसके पीछे शान्त कुतूहल में डूबी भीड़ चल रही थी. भीड़ आतंकित थी क्योंकि कोई भी, उस पर गाली नहीं उछाल रहा था. पथराव नहीं कर रहा था. वह चलती थी तो भीड़ चलती थी और वह रुकती थी तो भीड़ यन्त्रवत रुक जाती थी.

वह थाने की ओर जा रही थी. निडर और अभीत. भीड़ नहीं समझ पा रही थी कि यह सब माजरा क्या है. उसके हंसिये पर किसका रक्त लगा है.

एक आदमी दबी जबान में बोला 'इसके घट में कोई देवी आ गयी है.'

"अरे सोहन की 'बीनणी' का प्रेत इसमें प्रवेश कर गया है."

"यह बावली हो गयी है"

पर वह मौन बनी हुई थाने की ओर जा रही थी.

गाँव का थाना छोटा-सा था. बाहर एक सिपाही टहल रहा था. उसने जैसे ही यह दृश्य देखा, वैसे ही वह स्तब्ध हो गया—एक पल के लिए. फिर वह थोड़ा आगे आया. उसने अपनी मूँछ पर हाथ फेर कर कड़क कर कहा-'रुक जाओ, यह क्या तमाशा है ?

वह एक पल थमी. उसने एक क्रूर दृष्टि सिपाही पर फेंकी. उसकी आकृति सूखे पत्ते की तरह कड़ी हो गयी. उसने हंसिये को झटका दिया और बिना बोले ही वह थाने के फाटक में घुस गयी.

सिपाही थाने में लपक कर गया. वह दो मिनटों में थानेदार को ले आया. थानेदार शायद विश्राम के मूड में था अतः बिना पट्टे, व टोपी के बाहर आया. आया तो अप्रतिम रह गया. नजारा देखा, तो देखता ही रहा गया. वह उसे पहचान गया. यह तो 'बरजी' है. चौधरी विशन की विधवा

तब तक बरजी थाने में प्रविष्ट कर गयी थी. थानेदार ने घूमकर झुंझला कर-कहा-'यह क्या पागलपन है. यह चंडिका रूप क्यों बनाया है.'

थानेदार अपने दफ्तर में आ गया. उसने आहिस्ते से हंसिया मेज पर रख दिया. एक लम्बा सांस लेकर वह शब्दों को चबा कर बोली, 'मैंने हत्या कर दी है.'

"किसकी ?'

'दाताराम की."

"दाताराम की" थानेदार लगभग चीख पड़ा. उसकी आंखें विस्फारित हो गयीं. क्षणिक जड़ता ने उसका घेराव कर लिया. जैसे उसे अब विश्वास नहीं हो रहा है. ऐसे स्वर में बोला, 'दाताराम' चौधरी 'दाताराम यानि अपने सरपंच जी को ?'

"जी."

'क्या बकती है."

वह विचित्र विक्षिप्त सी चीखी-'बकती नहीं हूं', मैंने उसे मार डाला है, मैंने इस हंसिए से उसकी गर्दन धड़ से अलग कर दी है. उसको सदा की नींद सुला दिया है' अन्त में उसका गला अवरुद्ध हो गया. आंखें नम. वह पीपल के सूखे पत्ते की तरह थर-थर धुजने लगी. उसके चेहरे की दृढ़ता व क्रूरता पर करुणा की परत छा गयी.

'कहाँ है उसकी लाश ?'

'स्कूल के पिछले आहते में.'

थानेदार ने जल्दी से अपना बैल्ट लगाया. टोपी पहनी. दो पुलिसवालों को लेकर वह घटना स्थल की ओर लपक पड़ा. उसके साथ बरजी थी. भीड़ की आकृतियों पर यह [illegible] का भाव [illegible] था. [illegible] पर [illegible] और [illegible] के

पेड़ों पर से सनसनाती हवा भी 'अब दाताराम की हत्या हो गयी' कहने लगी थी.

गांव के छोटे-छोटे मकान, कच्ची झोंपड़ियों और हवेलियों की दीवारों पर 'धुन-गुन ध्वनित हो रहा था. सरकारी महकमों में भी यह आवाज़ जबरदस्ती घुस गयी थी. एक हलचल और एक आतंक !

'किसान की विधवा ने सरपंच की हत्या करदी.' सनसनी. घृणा. नमक मिर्च लगी बातें. बहुत से लोगों के दिमागों में अब भी अविश्वास अटका हुआ था 'भला इतनी समझदार सयानी औरत ऐसा घृणित काम कैसे कर सकती है.'

लेकिन प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत नहीं. घटना स्थल पर दाताराम का शव पड़ा था. धड़ अलग और शरीर अलग. एक दम वीभत्स और क्षत-विक्षत रक्त फर्श पर सूख गया था. उसकी आंखें बहुत भयानक व डरावनी लग रही थीं

थानेदार पागल की तरह चिल्लाया-तूने सचमुच मार डाला चुड़ैल ! नीच, कमीनी तुझे जिंदा जलवा दूंगा.

थानेदार वाचाल हो गया. सरपंच दाताराम को मारने की हिम्मत बड़े-बड़े लोग नहीं कर सके थे, फिर यह अदना औरत ! उसका धैर्य खत्म हो गया. उसने तड़ातड़ चांटें मारने शुरू कर दिये.

बरजी गरज पड़ी 'खबरदार जो मुझ पर दुबारा हाथ उठाया तो' उसकी प्रचंड प्रखर आकृति से थानेदार डर गया. वह किसी अपरिचित दहशत से घिर गया. आहिस्ता आहिस्ते वह बरजी की ओर बढ़ा. फिर उसने तुरन्त इन्सपेक्टर को बुलाने के लिए पुलिस वाले को भेजा. तब तक स्कूल के आहते में, उसकी चार दीवारी के चारों ओर, आस पास के मकानों पर भीड़ ही भीड़ जमा हो गयी. दाताराम की विधवा और अन्य घरवाले रोते हुए, सिर छाती पाटते-पीटते आ गये थे.

ऐसी दुर्दान्त दुर्घटना की किसी को कल्पना भी नहीं थी. चौबीस घंटे की निरन्तर कार्यवाही के बाद पंचनामा भर गया. बरजी को हवालात में बंद कर दिया.

× × ×

आज बरजी के बयान थे

शहर की अदालत खचाखच भरी थी.

बाहर भीड़ का सैलाब था. बड़े-बड़े नेता सरकारी अफसर और व्यापारी भी दिखायी पड़ रहे थे. अदालत में पुलिस का कड़ा प्रबन्ध था. कहीं भीड़ दंगा फसाद न करदे क्योंकि एक दल बरजी के प्रति गहरी संवेदना व हमदर्दी रख रहा था. उन्हें लोग नक्सली या उग्रपंथी कम्युनिस्ट कह रहे थे. पुलिस को आशंका थी कि ये लोग नारों द्वारा अदालत का घेराव करेंगे, न्यायाधीश को सचेत करेंगे कि वह मंत्रियों के प्रभाव में न आये !

निष्पक्ष न्याय माँगेंगे. क्योंकि बरजी का जीवन एक संघर्षमयी नारी के प्रतीक स्वरूप विख्यात था. उसके जीवन की लम्बी चादर में कोई भी दाग धब्बा नहीं था. वह स्वयं खेतिहर थी और अपने जीवन-जोबन को उसने मेहनत की कठोर गरिमा में लगा दिया था. ऐसी नारी भला इतनी नृशंसता से कैसे किसी की हत्या कर सकती है ! चंद लोगों को इसमें एक रहस्य चिलमें भरता नजर आया.

'बयान में देर है !' यह वाक्य भीड़ पर तैरा. देखते-देखते भीड़ टुकड़ों में बंट गयी.

कांग्रेस पार्टी के जिलाध्यक्ष कह रहे थे. "इसमें विरोधियों का स्पष्ट हाथ है. लगता है—हत्या किसी ने की है और दोष किसी पर लगाया जा रहा है. क्योंकि नारी के प्रति हमारे देश का कानून उदार जो है."

ठेकेदार कह रहा था. "हमारे बीच में से एक महान कार्यकर्ता उठ गया. उन्होंने अपने गाँव में ही नहीं, चारों ओर जागृति की रणभेरी बजा दी थी.

असन्तुष्ट युवक करनैलसिंह कह रहा था—' देश के साथ-साथ दाताराम ने भी उन्नति-प्रगति की. देश की समृद्धि के समानान्तर दाताराम के घर में भी एक पुल."

एक छात्र बीच में बोला. "पर वह नोटों का "

हलकी हँसी छा गयी.

करनैलसिंह फिर बोला,—"खादी के सफेद उजले वस्त्रों में वह काला दैत्य था."

किसी ने कहा. "बयान शुरू हो गये है."

लोग अदालत में फँस से गये.

घुटन, पसीना और फुसफुसाहट.

बरजी कह रही थी. "मैंने दाताराम की जानबूझ कर हत्या की है. मैं अपने बचाव में एक भी लफ्ज नहीं कहना चाहती हूँ. मैं इतना ही कहूँगी कि यह हत्या मेरा बदला है. अपने पति की मौत का बदला. सारी जनता के शोषण का बदला. मैं नहीं जानती—ये कानून के ठेकेदार न्याय के नाम से क्या बेचते और खरीदते हैं किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि अपराधी अपनी गहरी काली चादर में अपने अपराध के सारे सबूत दबा जाता है और फिर अपने को 'युधिष्ठर' कह कर एक पद और आगे बढ़ जाता है. दाताराम ! भूतपूर्व विधायक, आज के सरपंच, मिनिस्टरों के चमचे, नहीं कुढ़ंगे, भ्रष्टाचारी, दुराचारी और हत्यारे को मैंने बहुत सोच समझ कर हत्या की है. आप सब मुझे हत्यारिनी व कातिल कह सकते हैं किन्तु वह देश का चमकदार कलंक था, चमकदार इसलिए कि वह इज्जत पाता था, देश का संचालन करता था. यदि यह समाज, देश एक नारी को सन्देह में अग्नि-परीक्षा के लिए बाध्य कर सकता है फिर जिन्होंने जितने रोम उतने कलंक अपने शरीर में अंकित कर रखे हैं उन्हें क्यों न जला दिया जाय ?"

"दाताराम ! इस क्षेत्र के प्रशासन का मुखिया था. मंत्री से लेकर न्यायाधीश तक उसके संकेत पर चलते थे. एक साधारण किसान 'दतिया' जिसके पास कभी इतनी भी जमीं नहीं थी कि वह अपने परिवार का पेट भर सके आज कई बीघों का स्वामी हो गया था. उसके दो कारखाने थे. ट्रक और बसें चलाता था'. दतिया से दाताराम बन गया था ! यह सब कहां से आया ? मैं बताती हूँ—उस नीच कमीने ने.

इन शब्दों के साथ कुछ लोगों ने अपने कान बंद कर लिये. कह उठे—'एक पवित्रात्मा पर गंदी गालियां ? वे राष्ट्र सेवक थे.'

पर बरजो तपते हुए स्वर में बोली—"उस कमीने ने मेरे पति की हत्या की, मेरी जमीन हड़पी, झूठे कागजात तैयार करके उसने मुझे बेघर किया..." तुम्हारे इस खर्चीले और ऊंचे न्याय ने मुझ गरीब को अदालत के चौखटे पर नहीं चढ़ने दिया. इन पेशेवर वकीलों ने तर्कों से मेरे सत्य को पराजित कर दिया. इन डरपोक न्यायाधीशों ने अपराधी को निरपराध घोषित कर दिया,क्योंकि दाताराम के गुंडों ने न्यायाधीशों को धमकी दी थी कि उनके परिवारों के सदस्यों को खत्म कर दिया जायेगा. उनकी बदली करा दी जायेगी... अपने-अपनी मजबूरी से सभी त्रस्त है

आवाजें भड़रायीं. "दोष" दोष !"

बरजो ने थूक को निगल कर कहा- ' सत्य मरता गया. झूठ जीवित होता गया. दाताराम अकाल को भी भक्ष कर गया. गरीब आधे नंगे थे वे नंगे हो गये और दाताराम ने मंदिर बना दिया. मैं देखती रही—अपने को दुखों व अकेलेपन को समर्पित करके मैं जीवित रही. अपने एकलौते बच्चे को जवान किया. उसकी रगों में क्रांति की ऊष्मा भरी और मैंने उस नराधम को खत्म कर दिया. उस आदमखोर ने न मालूम कितना रुपया बनाया था, रिश्वत का दैत्य भी उसे कहूँ तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी;...अकाल, पंचायत, विकास और बदली के नाम पर वह अगस्त्य मुनि की तरह सब अच्छाइयों को पी गया; फिर भी वह हमारा अगुआ बना रहा. वह आदमखोर गांव की एक-एक मास्टरनी के जिस्म को खा गया. बस भी उसने गरीब मास्टरनी कमला को अजगर की भांति निगलना चाहा. उसको उस दुष्ट ने गंदी व ओछी धमकियों से पहले ही बांध दिया था. अपने तीन छोटे भाई बहिन व एक अपंग माँ की जिम्मेदारी से विवश कमला का विद्रोह गूंगा हो गया था. जहां किसी का विद्रोह गूंगा होता था वहां उसकी वासना शेषनाग की भांति हजारों स्वरों में बोलने लगती थी. पर कमला ने मुझे कह दिया. और मैं कई दिनों से सोच भी रही थी. इस सफेदपोश को मार कर इस देश और धरती से एक दैत्य को कम करदूं. जानती हूं-एक दैत्य को मारने से दैत्यों की कमी थोड़े ही आजायेगी. जैसे हालात, जैसे गलत सांचे-ढांचे इस राजकीय व्यवस्था में हैं उनमें एक दैत्य मरता है और इक्कीस पैदा होते हैं. और इस मामले में यह प्रशासन, यह व्यवस्था इतनी उर्वरा है कि एक दैत्य को मारो तो एक हजार एक दैत्य पैदा करती है और हमारे देश के करोड़-करोड़ नपुंसक देवता हिजड़ों की तरह तालियां बजा-बजा कर नाचते रहते हैं...ये देवताओं की भीड़ !" बरजो ने जनता की ओर सकल

नयनों से देख कर ऐसे कहा, मानों उसमें क्रांति की देवी प्रविष्ट कर गयी हो उसके शब्द में इंकलाब के अंगारे दीप्त हो गये हो. उसकी अंगारे सी ज्वलित दृष्टि मानों कह रही हो-ये नपुंसक देवता ! कायर जनता ! मुट्ठी भर दैत्यों के सामने उसी तरह नतमस्तक है जिस तरह हजारों गुलाम चंद मालिकों के समक्ष. ये दैत्य जो निस्सन्देह बहुत दुर्बल, अशक्त है और कच्चे पांव वाले हैं, जिनके हृदय हर पल उस क्रांति की आग की लपेट में आ जाने के लिए आतंकित है, जो आपके सीनो मे दबी पड़ी है....जो हर पल मृत्यु से आतंकित है क्योंकि उन्हें आप लोगो के जंग लगे हथियारों से खतरा है. जो आप लोगो को एक पल इज्जत, प्यार और अपनापन देकर वर्षों तक जलील करते हैं, जो चंद नोट देकर आपका वोट लेकर, आपको स्थाई गरीबी, भूख और बीमारी दे जाते हैं, आपके कंकालों पर अपने वाहन चलाते है-ये कितने निर्दयी है, नीच है, रक्त-पिपासु हैं...और आप कितने निर्बल हैं, अपंग हैं असहाय हैं जबकि आप में वह ज्वालामुखी है जो एक पल में भड़क कर इनको समूल नष्ट कर सकता है...केवल आप अपने भीतर की उस आग को पहचानें जो बुझ गयी है, अपनी बाजुओं की उस ताकत को जानें जिसे स्थितियों ने बांध दिया है... आप तो करोड़ों है... असंख्य...खेतों में कारखानों में—सर्वत्र—

न्यायाधीश स्तब्ध था, क्योंकि बरजी कटघरे पर सुबक-सुबक रो रही थी. जनता भी उत्तेजित थी.

न्यायधीश ने कहा मुल्जिमा बरजी अपना बयान जारी रखे.

बरजी ने अगाध व्यथा से चारों ओर देखा. फिर वह कड़क कर बोली 'मैं इन नामर्द देवताओं की भीड़ से कह रही हूं कि दाताराम की वासना के ताप से मैंने कमला को बचा लिया. उसे पहले ही शहर भेज दिया और मैं स्वयं उसके स्थान पर चली गयी. फिर मैंने दाताराम को अनाज की बाल की तरह काट दिया—मुझे फांसी से भय नहीं, मुझे उम्र कैद से डर नहीं, मैं अपने बेटे में रोगी-जानवर बन कर जीने से मर जाना बेहतर है. यदि करोड़ देवता जागें तो मुट्ठी भर दैत्य एक पल में खत्म हो सकते हैं.—प्रतिशोध-एक सामूहिक प्रतिशोध की आवश्यकता है.—एक पद्धति अपनानी होगी चाहे वह किसी भी अवसर क्यों न हो ? वह एक बार चुप होकर बोली माननीय वेतन भोगी न्यायाधीश, आप अपनी किताबों की धाराओं के अनुसार मुझे दंड दे सकते हैं. मैं एक बार फिर कहती हूं. मैंने दाताराम की हत्या की है. एक अत्याचारी, रिश्वतखोर, व्यभिचारी की हत्या की है [illegible] यह सिलसिला जारी रहेगी क्योंकि अब सब कुछ बर्दाश्त के बाहर हो गया है. ..

[illegible] मेज को जोर-जोर से [illegible]

[illegible]

## पक्षधर | ले. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

(गुरिल्ला चेतना का एक सही रूपान्तरकरण)

'लेकिन कुछ भी नहीं हो पा रहा था...सिर्फ अपने आहत होने का तेजाबी अहसास मुझे खौलाता था.' 'मैं उन रक्त बीजों से थक गया था.' 'अब तो बाकी थी, एक तल्ख जिद, उचाट रीतापन' 'मुझे आदेश मिला, मैं उस बयान को पाठकों...तक पहुचाद्.'—यही है 'पक्षधर' उपन्यास (लेखक-डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय) की पृष्ठ भूमि. आहत होने का तेजाबी अहसास खुली लड़ाई के लिये सहमत नही था ! लड़ना भी आवश्यक था तब 'क्रान्ति की धारणा का रूपायन', 'धारणा का मानसिकता मे रूपान्तरकरण...फैंटेसी .. कुछ भी कहिए'—लेकिन इतना सत्य है कि वह युद्ध जिसे अन्दर का तेजाबी अहसास भड़का रहा था 'गुरिल्ला युद्ध' ही हो सकता है. लड़ो और छिपो ! शत्रु को निरस्त करने का एक उम्दा तरीका जिसमें—'अस्तित्व हत्या' का भय होते हुये भी नहीं रहता !

गुरिल्लायुद्ध के लिये पात्र व परिवेशगत असामान्यस्थिति की आवश्यकता होती है जिसका लेखक ने तेजाबिया ढंग से ही सृजन किया है. चितक मात्रा स्वाभाविक में अतिरिक्त की खोज करता है उसे आज के व्यक्ति व परिवेश से कोफ्त है ! वे सुरक्षा के भाव में संघर्ष से डरते है. 'लोग समतल पर रहना चाहते हैं, ऊचाई बस इतनी कि नालो, नदियो का पानी उन तक न पहुंचे वे सुरक्षित रहें, बस इससे ऊचे नहीं.' कभी वह 'ड्रिफ्ट या फिसलन' अनुभव करता सोचता है, 'ठहराव आते ही उतार की तरफ रुझान हुई... लेकिन ऐसा क्यों होता है ?' वह स्वयं से ही प्रश्न करता है 'क्या मैं मुक्त हूँ या बद्ध ? कुछ भी तो नहीं.' और उसे अहसास होने लगता है उसे क्षीक रोग है, वह निश्चय करता है 'मैं अब की दफा अपने घूंसो के जोर से काम लूंगा.' स्थिति के दैन्य चेहरों से क्षुब्ध मात्रा सामान्य या स्वाभाविक से हटकर असामान्य या अस्वाभाविक को जीना चाहता है.

इन्दीवर, तृप्ता, अमिताभ सब असामान्य प्रिय पात्र हैं जो 'जीते रहो' के अपन हटकर

---

प्रकाशक: स्मृति प्रकाशन, ६१ महाजनी टोला इलाहाबाद मू० पन्द्रह दे

'जी रहे हैं' की चुनौती भरी मुद्रा में आते हैं. अमिताभ को शिकायत है 'हम व्यवस्था से नहीं लड़ रहे हैं व्यवस्था को सिर्फ नमन शील बना रहे हैं.' इधर तृप्ता कहती है 'तरक्की की भूल भुलइयों मे मनुष्य खो गया है. जिसे ढूंढो वह नहीं मिलता और मिल जाता है.' तभी जनार्दन जो एक नहीं अनेक आयामों का रुप लेकर आया है जो अपने अन्दर की तमाम संवेगिक चित्तवृतियों को निमंत्रित कर चुका है, जो पश्चात् प्रतिमाओं को तोड़ कर वर्तमान का 'गुप्त संकेत चालक' (कोड ऑपरेटर) है, सत्य को विगोप (EXPOSE) 'करता है 'कर्म लेखक को हवाई और कृतिम नही होने देता.'

यह नही कि ये सब वस्तु स्थिति से अभिज्ञ है वे जानते हैं 'आदमी की बुनियाद में कहीं टेढ़ापन है' फिर भी वे उस फितरत से अलग हट कर जीना चाहते हैं अस्थिति का जीवन !

कुछ ऐसे भी पात्र हैं जो प्रकृति को दूसरी ओर से लांघना चाहते हैं ! ब्रह्मराक्षस जिसकी आंखें आदमी को देख कर सुर्ख हो जाती हैं और नसें भूख से झन झनाने लगती हैं. लेकिन जनार्दन जानता है 'नरभक्षक एक रिश्ते मे बंधे है.' वह ब्रह्मराक्षस स्थिति से भाग कर प्रकृति से मिलना चाहता था, जनार्दन व माशा स्थिति से भाग कर प्रकृति से मिलना चाहता था; जनार्दन व माशा स्थिति को तोड़ कर प्रकृति से मिलना चाहते हैं अनेक ऐसे हैं जो प्रकृति से बचना चाहते हैं जैसे तत्वदर्शी (विजक) जिन्हें चिन्ता है कि लोग घटना क्यों बनते हैं. वे काल और देश को कसावट को तोड़कर निस्सीम होना चाहते है लेकिन मस्तिष्क की मशीन उनकी पहुच को एक खूंटे से बांधे हुए थी जब वे झटके दे देकर भी समय में ही रहे तब उन्होंने रस्सी खींचना बन्द कर सिर्फ होने में रहना सीखा था.'

'हो' और 'हम' मानवीय फितरत के टेढेपन के दो-नमूने हैं जिनके निकट 'ज्ञान का सार यही है. सेंस से नहीं न्यूसेन्स से दबाओ, अर्थ से नहीं अनर्थ से दुनियां दबती है.' पदम, उद्योगपति है. सरकार का वलहय निर्देशक ! तृप्ता के निकट वह मींगोवाला सूअर है. 'मैं इसमे (मन्त्रशामे) वंचित न हो जाऊं''-की चिन्ता में घुमने वाला गरीब परवर भी अपरचित नहीं हैं, जो व्यवस्था को ब्लैक मेल करता है. वह कभी नहीं हारता, गांधिवादियों के मजमे हों या मनासन वर्ग की घुस-पैठ; राजनीति के दाव-पेंच हो या आतंकवादियों की वाम-मुद्राएं वह सबको छलता है. यहां तक कि मृत्यु को भी ब्लैक मेल करना चाहता है लुट कर भी वह इग्नीशर व तृप्ता को लूट लेता है. दिन के उजाले में झण्डा लेकर प्रदर्शन के आगे है लेकिन अंधेरे में उनके विरोध में पर्चे बटवाता है ! वह उस वर्ग का प्रतिनिधि है जिसे 'पाप' कहा जा सकता है जो ठग से भी आगे की पोनी होती है ! वह हर व्यवस्था में अपने को बचा ले जाने की क्षमता रखता है.

म लंद, निराश योगरो, जुल्फिकार नया रक्त है जो स्थिति से लग या विस्फोट चाहता है. सबओरा का बचाव नहीं. आरायी वर्ग जिसका कल तक उसूल था 'लूट,' अब कारखानों, हाड़ो और कोठ़ा बेदो के उद्घाटन बोलता है. मुनीरतो कहता है 'दुनूर मे

गुफा था, लेकिन मैं जानता हूं यह गरीब की अमीरों, बड़े आदमियों से लड़ाई है.' एक गुरिल्ला इन सब के अन्दर बोल रहा था.

इधर विश्वविद्यालयो, विचार केन्द्रों में कुर्सियों पर 'बोधिसत्व' चिपके बैठे हैं जो किसी भी प्रत्यभिज्ञा को निर्णय तक नहीं पहुचने देते, तर्कों और बहसो मे उलझा स्थिति को ज्यों का त्यों बनाए रखना चाहते हैं क्योंकि स्थिति भंवर' की स्थिति में उनका रूप-सहन भी अनिवार्य है.

दूसरी ओर ऐसे भी विचार केन्द्र हैं जहां निर्णय होते हैं 'यह वरण का समय है, जन मानस की तैय्यारी में कला और चिंतन को पक्षधर होना पड़ेगा. सोच और सर्जन अभी तक हमें सिर्फ विकृतियो को सहन करना सिखाता रहा है' इस तरह 'सहन करते रहना' और 'उसके विरुद्ध'-दोनो पक्ष सम्मोष हैं. गुरिल्ला अपनी खुकरी संभाल रहा है ! युद्ध आवश्यक है ! दार्शनिकता हमारे अस्तित्व को चरगई, तर्क और बुद्धि ने निर्णय तक न पहुंचने देकर अन्ततः 'भोगते रहो' की स्थिति को ही सहयोग दिया. अब व्याख्या या विश्लेषण नहीं केवल निर्णय होने स्थिति से छुटकारा पाने के !

६० पृष्ठों तक पात्रों की मनः या अन्त पृष्ठ भूमि उजागर होती रहती है जिसमे सामान्य से असामान्य; सुलझाव से उलझाव सहयोग से असहयोग; स्थिति से अस्थिति की ओर एक तीव्र रुझान नहीं ललकं हैं. वे द्रव्यों की तरलता स नहीं उफान से ऊंचा उठना चाहते हैं. यह निर्णय किसी उत्तेजना का परिणाम नहीं है न मात्र कुछ कर गुजरने की चाह या उच्छृंखलता ही है. इसके पीछे उस व्यवस्था से छुटकारे की अदम्य लालसा है जो आदमी को पिसते रहने के लिए विवश कर रही है 'जो है; सो है' की स्थिति से छुटकारे .के निर्णय से पूर्व अनेक सदर्भों मे आदमी को लेकर सोचा गया है. सोचने के लिये विषय की ओर लोटने मे सकोच नहीं रहा, आधारो की खोज के लिये चैतन्य के विश्लेषण को ओर भी प्रयास हैं जो तात्कालिक रूप से अनुभव को मूक कर देता है, वस्तुगत सत् के प्रश्न को स्थगित कर देता है. यहा स्थगन का पर्यवसत् का प्रतिषेध है न किसी रूप मे स्वीकार हैं अपितु वह ऐसे बोधमे ग्रहण है जो निर्णय से प्राक् होना है ! अनेक स्थानों पर वह प्रश्न कर्ता के रूप मे पूछता है 'क्या प्रकृति पदार्थ के स्तर पर हार कर, मनुष्य की मानसिकता के स्तर पर उससे प्रतिशोध ले रही है' 'क्या हम सिर्फ प्रकृति की प्रक्रिया और प्रयोजन क माध्यम मात्र हैं अथवा उससे परे जा सकते हैं.'

और वह परे जाना चाहता है, उस साचे को तोड़ देना चाहता है जिसमे आदमी आदतन कैद है. उसका एक ही रास्ता है हिंसा, जबकि वह जानता है 'पूर्णता—परफेक्शन-की धारणा ही प्रकृति के विरुद्ध है.' लेकिन उसका गुरिल्ला किसी भी तर्क को स्वीकारने के लिये प्रस्तुत नहीं है !

अस्तित्ववादी इस हिंसा से घबराते हैं वे स्थिति को ज्यों का त्यों देखना चाहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि स्थिति-पुत्रों का स्थिति-भग होने पर भंजन अनिवार्य होगा ! और वे अभी जीना चाहते हैं भले ही दया की जिन्दगी हो या गंदे नाले की, वे सुरक्षा चाहते हैं; कहीं भी जी लेंगे ! इस प्रकार तीन प्रकार के पात्र लक्षित हैं—

(१) स्थिति-पुत्र—जो है सो है के समर्थक.

(२) सुधारवादी—जो सुविधा के लिए स्थिति को नमनशील बनाना चाहते हैं.

ये दोनो अस्तित्ववादी हैं.

(३) अस्थिति-पुत्र—जो अन्त तक बदल देना चाहते हैं.

प्रथम श्रेणी मे उद्योगपतियों, पूंजीपतियों का नाम आता है. दूसरी श्रेणी में राजनैतिक-दल, व्यवस्था व प्रशासन सम्मलित है. वामपंथी पार्टियों के दफ्तर, अध्ययन केन्द्र बातूनी और अकड़ फूं पदाधिकारियों के अड्डे बन गये हैं. वे चाहते हैं क्रान्ति की जगह अस्तित्व का प्रचार हो ! क्रान्ति कर्म को सिर्फ चुनाव तक सीमित रखना चाहते हैं या संसद और विधान सभाओं में वैधानिक विरोध तक ! इधर प्रशासन विरोधियों को भी बनाए रखना चाहता है और स्थिति-पुत्रों को भी जिसमे वह एक दूसरे के माध्यम से एक दूसरे का शोषण कर अपने को पालता रहे. ये सब पूर्णता के विरोधी हैं क्योंकि समझते हैं कि पूर्णता ( जो किसी भी पक्ष की हो ) में वे अस्तित्व हीन हो जायेंगे।

तीसरी श्रेणी के पात्र समय का इन्तजार नहीं करना चाहते हैं वे जानते है बुद्धिवादियों से क्रान्ति सम्भव नहीं है. वे सुधार नही पूर्ण बदलाव चाहते हैं उनके अन्दर का गुरिल्ला करवटें बदलता रहा है.

तृप्ता और बर्टी दो स्त्री पात्र हैं दोनों ध्येय के लिये समर्पित होकर भी दो हैं ! तृप्ता ने जनार्दन को पाने के लिये सहयोगी का रूप चुना जबकि बर्टी अपमानित होकर घृणा के माध्यम से पा लेना चाहती थी. दोनों ने जनार्दन को नही पाया और दोनों ने पा भी लिया ! एक ने जनार्दन के लिये मर कर दूसरी ने जनार्दन के रास्ते पर चल कर ! दोनों के चरित्र में एक दृढ़ता है जो अंत तक रहती है और जो केवल गुरिल्ला में ही होती है.

परिवेश को पात्रों से हटकर नहीं पाया जा सकता क्योंकि परिवेश बाहर नहीं पात्रों के अन्दर है ! जनार्दन, माला, इन्दीवर, तृप्ता, बर्टी, अभिताभ, ब्रह्मराक्षस, रहीम वगैरह ये सब प्रतीक हैं जो एक परिवेश को रूप देते हैं ! दूसरी रूप देते हैं पदम, गरीब परवर सरकार आदि ! ये सब मिल कर एक भूमि बनाते हैं जिस पर एक लड़ाई लड़ी जाती है जिसका ध्येय है 'स्वतन्त्र धर्मिक जनतन्त्र' की स्थापना जिसके लिये फार्मों, कारखानों, बाजार व्यापारों आदि को प्रतिनिधि सभाएं अपने सुभाषणों को चुन कर संसद में भेजें.

वे प्रशासन के डंडे को किसी वर्ग या दल विशेष के हाथों में नहीं देना चाहते न रूस, चीन की भूलों को दुहराना चाहते हैं और न वे 'जम्हूरियत के नाम पर दस का सत्ते पर सदा निजाम' ही चलने देना चाहते हैं.

लेकिन प्रशासन का 'डंडा' ऐसे व्यक्तियों के हाथों में है जो सरलता से नहीं दे सकते ! तब युद्ध आवश्यक है. श्रमिकों, किसानों, कामगरों को उस डंडे से मुक्ति दिलाने के लिये पत्थर आगे आते हैं, एक संगठन बना युद्ध की प्रणाली निर्धारित करते हैं वह प्रणाली है गुरिल्ला' प्रणाली. 'सगठन' की सर्व शक्ति हाई कमान में निहित रहती है जो निर्णय लेता है वह यहां जनार्दन है, जनता-जनार्दन ! उसकी युद्ध परिषद के सदस्य हैं माया इन्दीवर, तृप्ता आदि ! संगठन अपनी प्रचार, राजनैतिक, गुप्तचर आदि विभिन्न शाखाओं के माध्यम से स्थिति भंजन में सक्रिय होता है. 'गुप्त-सेवा-दल' जिसका संचालक इन्दीवर है संगठन के निर्णयों को तृप्ता के साथ पूर्ण करता है. और अंतिम निर्णय होता है विजयादशमी के दिन प्रदर्शन और सड़क पर लड़ाई. संगठन की रणनीति है मारो और छिपो. जब शत्रु संख्या में अधिक हो, साधन अपर्याप्त हो, तो यही रणनीति कारगर होती है.

देखने में इस प्रकार के संगठन का दर्शन हत्या, षड्यन्त्र, आतंक, लूट, विध्वंस तक ही सीमित लगता है किंतु ये तो उसके शत्रु को खोखला देने के तरीके हैं जिससे वह केन्द्रित होकर दमन न कर सके अन्यथा उनमें एक निश्चित स्थिरता लिये हुये एक संकल्प या विकल्प होता है, जिसकी प्राप्ति के साथ ही संगठन स्वतः लुप्त होता जाता है.

यों पत्थरों की गुरिल्ला या गुरिल्लाओं की बनने की कहानी है. वे समझौता और मौकापरस्ती से अलग हट, लड़कर अपने विकल्प को पा लेना चाहते हैं. वे सरकार की धीमी प्रक्रिया से असंतुष्ट हैं; शीघ्र उस डंडे को जिसे व्यवस्था कहते हैं छीन लेना चाहते हैं. आकारहीन देश भक्ति के विरोधी हैं लेकिन वे गुरुई से भिन्न राष्ट्रीय चेतना से युक्त भी हैं ! वे कामचलाऊ मुद्रा से भिन्न हैं लेकिन बारूद की तरह फट कर होकर बस मिटने की अपरिपक्वता भी इनमें नहीं है इन में धैर्य के साथ लगन और आवश्यकता पर बहता को चला देने का संकल्प है. इस आदमी के भीतर की आग की पूर्णता की ध्यान कहा जा सकता है.' 'गुरिल्ला ध्येय को समर्पित लड़ाका है' वह युद्ध में दूर चिंतन से परे का चिंतक है ! और सोचते रहने के स्थान पर निर्णय लेना होकर उसका अभिप्रेत है गुरिल्ला जब चाहे बन्दूक बन जाते हैं. उनका हृदय परिवर्तन में विश्वास नहीं.

पत्थरों का यह संगठन कार्यरत होता है. वह कामरेडों, दोस्त व दल्लूर बने, भई लोगों व दलित अपराधी वर्ग को अपना सहयोगी बनाता है क्योंकि वहाँ जनता है वही शक्ति है. पत्थर विशाल प्रदर्शन का आयोजन करते हैं क्योंकि बिना जन-सहयोग

के बड़ी से बड़ी शक्ति पराजय का मुंह देखती है. प्रदर्शन को असफल बनाने प्रशासनीय दैत्य व गरीब परवर जैसे स्थिति-वश गमगीन हो उठते हैं किन्तु सफल नहीं होते. अब गाँव शहरों को घेरेंगे. सड़क की लड़ाई प्रारम्भ होती है. जिसमें रहीम दरवेश रेजीमेन्ट मुनीरखाँ बटालियन, तरुणमंडल आरम्भित होते हैं और पक्षधरों का आकार बड़ा होता जाता है.

बदलाव को इस तीव्र प्रक्रिया के बीच 'फट फट, फट-फट' शब्द के स्वरों में फतेहनगर एक तांत्रिक बन गया मरण के अनुष्ठान में सम्पूर्ण शहर सुरंगों में घूम रहा था.' परताप उस सैलाब को रोकने का आदेश देता है-'फायर' !

और बदलाव अपनी कीमत चुकता है जो फतेह नगर ने भी चुकाया और परताप ने भी अपने पुत्र माधव को देकर. रहीम खाँ दरवेश कहता है 'परताप पर शैतान था, उतर गया' और तब पुलिस दस्ते ने जनता को सलामी दी जैसे वह 'जनता जनार्दन' के अर्थ को समझ गई हो. निर्णायक युद्ध अभी जारी था. जनार्दन की रक्षा के लिये अमानव (ब्रह्मण राक्षस) ने गोलियां अपने ऊपर झेली. दरवेश का प्रेत बोल रहा था 'फरिश्तो! अब इनकलाब तुम्हारे सुपुर्द है. कॉमरेड कमाण्डर, असली जम्हूरियत की नींव का पत्थर तरफदार गरीब गुरबा की सांसों का सरताज, पक्षधर जनार्दन शहीद हो गया ! मेरे बच्चों खुदा का प्यारा बेटा हुसैन कुरबान हो गया. मिस राबर्टी हाईबा उसको हम राह हुई दोस्तों हम फिर मिलेंगे. ?

जैसे उद्देश्य की प्राप्ति निकट देख एक-एक विदा ले गये हों, उस काल तक के लिये जब तक कि उन्हें पक्षधरों की आवश्यकता न हो ! अब वे स्वयं उस स्थिति से बाहर निकल आये थे. पक्षधरों का एक उद्देश्य लगभग पूरा हो गया था ! उस्मान अब लेफ्टीनेंट जनरल बन कर पक्षधर सेना दल का संचालन कर रहे थे परतापसिंह बचे हुए पुलिस के दस्तो के साथ दुश्मनो से जूझ रहे थे. जब-जब मनुष्य व्यवस्था से लड़ेगा, स्थिति और उस साँचे को तोड़ेगा जिसमें डंडे ने उसे कैद रहने के लिये अभ्यस्त कर दिया है युद्ध के दस्तावेज लिखे जाते रहेंगे, उन दस्तावेजों के दस्तखत बदल सकते हैं किंतु मुहर वही जनार्दन (जनता-जनार्दन) की ही होगी. !

'गुरिल्ला' का यह 'पक्षधर' में रूपान्तरकरण उसे एक सार्थकता देता है. गुरिल्ला जो पहले भाषा के व्यक्ति-स्तर पर 'रत' था जिसे आकांक्षा और उसके बीच की स्थितियों में देखा जा सकता है. आगे चलकर भाषा को 'पक्षधर' के रूप में प्रस्तुत करता है. यही स्थिति तृष्णा और जटों के साथ है ? यहाँ तक कि पागल दरवेश व ब्रह्मराक्षस जैसे अमानव भी 'पक्षधर' बन जाते हैं. अंत में व्यवस्था के लौह स्तम्भ परताप, उस्मान भी इस पक्षधर गुरिल्ला की चपेट में आये बिना न रह सके.

यह वह धरातल है जहाँ 'गुरिल्ला' को नया अर्थ दिया गया है. गुरिल्ला जब 'जनहित' की ओर आमुख होता है तो वह 'पक्षधर' होगा ! यही उसका सही रूप है ! और जब व्यक्ति हित ही उसका अभिप्रेय रहता है तो वह डाकू, गुंडा या अस्तित्ववादी कुछ भी कहलाये सकल्प और विकल्पो के रहते हुये या संघर्ष मे रत होने पर भी अगर उसका लक्ष्य 'जन-हित' या शोषित-वर्ग को मुक्ति दिलाना, या मांदे मे जड़ी तस्वीरनुमा आदमियों को मुक्ति दिलाना नहीं है तो वह पक्षधर नहीं कहा जा सकता !

करीमबख्श, पदम, हो, हुम मे भी तो गुरिल्ला है किन्तु वह पक्षधर नहीं हो सका इसीलिये एक को सिर कटा चौराहे पर लटकना पड़ा, दूसरे को पक्षधर गुरिल्ला के हाथों मरना पड़ा और हो, हुम को नाक कटानी पड़ी.

गुरिल्ला का सही रूपान्तरकरण 'पक्षधर' होना ही है अनेक उलझावो में उलझ कर भी लेखक प्रचलित शब्द को नये संदर्भों में लाकर उसे आयामिक गरिमा और सार्थक [illegible] के साथ स्थापित करने के कष्ट साध्य प्रयास में सफल रहा है किस्सों की कथनता कहानियत को अनेक स्थानो पर तोड़ती है जो शायद लेखक की मंशा रही हो !

---



---

आप
जरा स्वार्थी
हो सकते हैं
davp 72/130

सहयोगी पत्रिकाएं:—

मार्कण्डेय द्वारा सम्पादित

## कथा

संपर्क—डी. मिन्टो रोड, इलाहाबाद-२

---

## फिलहाल,

पाक्षिक पत्रिका

इस देश के संघर्षशील जीवन-सन्दर्भों और प्रगतिशील विचारों की निकटवर्ती जानकारी के लिए फिलहाल एक आवश्यक पत्रिका है।

संपर्क:—

*C/o* गणेश प्रसाद सिंह एडवोकेट,
पानी टंकी के पास रोड नं. १, राजेन्द्र नगर—पटना-१६

---

प्रगतिशील विचारों की प्रतिनिधि पत्रिका

## ओर

सम्पादक—विजेन्द्र

सम्पर्क—कुमारविला, मोहल्ला कोठियान, भरतपुर (राजस्थान)

---

विमल वर्मा द्वारा संपादित

## सामयिक

सम्पर्क.—बी-१०।४०-१ टेंगरा रोड, कलकत्ता-१६

---

## बिन्दु

सं०— नंद चतुर्वेदी,

सम्पर्क— ग्राम विद्यापीठ विद्या भवन, उदयपुर (राजस्थान)

---

वेणु गोपाल · राजेश जोशी द्वारा सम्पादित

## इसलिए

सम्पर्क:—४, मारवाड़ी रोड, बैंक स्ट्रीट भोपाल (म. प्र.)

[illegible] १.२५
[illegible] १.००

वर्ष : ११ अंक : ४

# वातायन

अक्टूबर ७२

( चिन्तन व सक्रिय सृजन का मासिक )

प्रारम्भ

## अनुक्रम



सम्पादक
ह॒रीश भादानी

सम्पर्क
[illegible]
महात्मा गांधी रोड
बीकानेर

[illegible]

देश की रक्षा
और विकास में
भाग लीजिये
साथ ही
5-वर्षीय
डाकघर सावधि जमाखाते पर
7 1/4 %
ब्याज
कसाइये
3 वर्षीय जमाखाते पर...7% और 1 वर्षीय जमाखाते पर ..6%
राष्ट्रीय
बचत संगठन

रह गई है। सिन्धुकालीन सभ्यता किस तरह ध्वंस हुई, उस सभ्यता में दास प्रथा था उसी तरह का कुछ था या नहीं, आक्रमणकारी आर्यों ने उस सभ्यता की विषय वस्तु को कितने अंश तक आत्मसात कर लिया था इत्यादि कुछ प्रश्न अभी भी विस्तृत व्याख्या की माग करते हैं। सिर्फ इसी काम में साधना-रत विद्वानों की दीर्घकालीन कष्ट साध्य गवेषणा ही इन समस्त प्रश्नों तथा भारतीय इतिहास के विकसित विज्ञान सम्बन्धी अन्य प्रश्नों के उत्तर देंगे।

भारतीय इतिहास के मार्क्सवादी विचारकों के समक्ष एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है "आदिम साम्यवादी समाज से क्रीतदास प्रथा, फिर सामन्त तन्त्र तथा उसके बाद पूंजीवाद" इस नियम के अनुसार ही क्या भारतीय समाज का विकास हुआ था न कि वह उसी सुपरिचित 'ऐशियेटिक सोसाइटी' संज्ञा की निजी विकास धारा में ही विकसित हुआ था ? कुछ-कुछ विद्वानों ने भारतीय इतिहास के विकास की प्रथम विधि के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है तथा अन्य कइयों ने बाद की विधि का अनुसरण करके भारतीय इतिहास की व्याख्या करना चाहा है। दोनों ने ही निजी मान्यताओं की मार्क्स तथा ऐंगेल्स की रचनाओं से सुपरिचित उद्धृति देकर व्याख्या करना चाहा है।

हमारे सामने जो पुस्तक है, वह है, मार्क्स की "प्री कैपिटलिस्ट इकानामिक फॉरमेशनस" (जैक कोहेन द्वारा अनुदित एरिक जे हॉबसब्‌यम द्वारा सम्पादित तथा साथ में एक भूमिका—इन्टर नेशनल पब्लिसर्स, न्यूयार्क १९६६, २.२५ डालर)
यह पुस्तक इस समस्या पर गम्भीरता से अनुशीलन करने में सहायक होगी। कार्ल मार्क्स ने अपने "क्रिटिक ऑफ पॉलीटिकल एकानॉमी एवं 'कैपीटल' ग्रंथ के प्रस्तुतीकरण के समय १८५७-१८५८ के वर्ष में जो नोट्स लिये थे, उन्हें संग्रहीत करके उसके साथ कौनसी परिस्थिति में ये नोट्स लिखे गये थे, की व्याख्या करके एक भूमिका एवं उन नोट्सों के अर्थ पर अपनी व्याख्या प्रस्तुत करके प्रकाशक ने ऐतिहासिक गवेषणा के क्षेत्र का अन्तहीन उपकार किया है।

सम्पादक ने ठीक ही लिखा है कि लेखक वास्तव में क्या कहना चाहता है वह हर समय स्पष्ट नहीं हो पाता है, किन्तु पूर्व सम्बन्धों तथा साथ ही अन्य प्रकाशित पुस्तकों के साथ मिलाकर अर्थ का अनुमान कर लेना होगा। हॉबसब्‌यम ने विलक्षणता का एक यह काम अवश्य किया है—पाई जा सके ऐसी समस्त बातों को एक साथ मिलाकर उसके भीतर के सम्भावित तर्क की व्याख्या की है।

इसीलिये भारतीय विषय के प्रत्येक विद्यार्थी—सिर्फ भारतीय इतिहास के विद्वान ही नहीं, यहां तक कि अर्थ शास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों, राजनीतिविदों, कला और साहित्य

क्षेत्र के समालोचकों इत्यादि—यदि मार्क्स । ऐंगेल्स की अन्य प्रकाशित रचनाओं के साथ इस पुस्तक का भी अध्ययन करें तो काफी अच्छा रहेगा । क्योंकि तभी वह साधारण तौर पर 'एशियेटिक समाज' तथा विशेष कर भारतीय समाज के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वस्तुवाद के प्रवक्ताओं ने क्या बात कही है उसकी धारणा प्राप्त कर सकेंगे।

जिस पूंजीवादी समाज के उद्भव तथा विकास पर मार्क्स ने अनुसंधान किये थे उसी सबंध में इन नोट्स में भी वे प्रधानतः उत्साही थे। जैसाकि उनकी सभी बड़ी-बड़ी रचनाओं में मिलता है। "एशियेटिक समाज" 'जर्मनिक समाज' 'स्लाविक समाज' तथा प्राचीन 'क्लासिकल समाज' इत्यादि के सम्बन्ध में भी वे काफी उत्साही थे। क्योंकि ये सभी 'पूर्व-पूंजीवादी समाज' (Pre Capitalist-Society) थे। केवल इन सभी समाजों सम्बन्धी विस्तृत जानकारी से ही यह दिखाया जा सकता था कि किस प्रकार पूंजीवाद अन्य सभी समाजों को अपने प्रभाव में ला रहा था।

'प्राचीन कम्यूनों' के आधार पर स्वाधीन क्षुद्र जमीन मालिकाना तथा समाजगत भूमि सम्पत्ति इस दोहरी सम्पदा के बीच पटल थे—यही उनके लोगों में अनुमोदन के [illegible] थे। सिर्फ पूर्व-पूंजीवादी सम्पत्ति की ऐसी पटल ही मजूरी। श्रम और पूंजी के लिये आवश्यक पूर्व परिस्थिति सृष्टि कर सकते हैं।

आवश्यक पूर्व-परिस्थितियां ये हैं—

१. स्वाधीन श्रमिक तथा अर्थ के बदले स्वाधीन श्रम का विनिमय—अर्थ को पुनः उत्पादन के लिये तथा उसे मूल्य में परिवर्तित करने के लिये जिससे अर्थ उसका भोग कर सके, भोग विलास का व्यवहार मूल्य के हिसाब नहीं है बल्कि [illegible] के लिये आवश्यक मूल्य के हिसाब से है। (पृ ६७)

२. "श्रम को फलदायी बनाने की प्राकृतिक स्थिति—[illegible] से उसे विच्छिन्न करना। इस सबसे अधिक इसका अर्थ यह है कि [illegible] स्वाभाविक प्रयोगशाला के रूप से काम करती है [illegible] विच्छिन्न करना होगा" (पृ ६७)

इसलिये साधारण तौर पर ऐशियेटिक समाज तथा विशेष कर [illegible] है मार्क्स की प्रारंभिक [illegible] को इनके [illegible] किस अवस्था से इनके पूंजीवाद के [illegible] ऐशियेटिक या भारतीय समाज [illegible] इन पूर्व-[illegible] की [illegible] ऐतिहासिक विकास की सम्पूर्ण [illegible]

निक दृष्टि के अलावा और कुछ नहीं होगा। इसलिये भारतीय इतिहास के किसी भी विषय पर किसी भारतीय ऐतिहासिक के गवेषणालब्ध सैद्धांतिक निष्कर्षों को प्रमाणित या अस्वीकृत करने के लिये इन नोटों अथवा मार्क्स और ऐंगेल्स की रचनाओं से उद्धृति देने की कोई आवश्यकता नहीं है। मूल बात यह है कि वैज्ञानिक विश्लेषण की सभी समस्याओं के क्षेत्र में मार्क्सवाद कोई "परोक्ष कुंजी" नहीं है। यह है—किसी भी विद्वान व्यक्ति की गवेषणाएं, घटनागत तथ्यों के संग्रह और विश्लेषण, प्रहित सामयिक सिद्धान्त और घटनागत तथ्यों के एकीकरण से सामयिक सिद्धान्तों का परीक्षण इत्यादि के लिये अपरिहार्य पथ निर्देशन।

मानव इतिहास के, मात्र एशियेटिक या भारतीय इतिहास के नहीं, सम्पूर्ण विश्व के मानव इतिहास के विद्वानों के लिये यह समस्त नोट अत्यधिक सहायक होंगे क्योंकि किस प्रकार प्राग—ऐतिहासिक आदिम समाज छिन्न-भिन्न हुआ तथा किस प्रकार श्रेणी विभाजित समाज के विभिन्न रूपों को जन्म दिया। इसका एक सामान्य चित्र ये समस्त नोट प्रस्तुत करते हैं। पहले की बात का उल्लेख करते हुए मार्क्स ने कहा है—"हम स्थिरता के साथ निश्चित रूप में यह मान सकते हैं कि पशु-पालन और भी साधारण तौर पर बन्जारा जीवन ही मानव अस्तित्व रक्षा का प्रथम स्वरूप है। कबीले एक निश्चित स्थान पर बस्ती स्थापित नहीं करते थे तथा स्थानीय तौर पर जो मिलता उसे ही लाकर आगे चलते जाते। मनुष्य का स्वभाव ही स्थिति-शील नहीं है (बावजूद इसके कि वह उन सभी उर्वर स्थानों पर ही रहते जहां वे बन्दरों की तरह मात्र एक पेड़ पर निर्भर रह के प्राण रक्षा कर सकते थे, नहीं तो वे वन प्राणियों की तरह ही भटकते रहते थे) इसलिये ऐसा लगता है कि उत्प्रानीय कबीले अर्थात स्वाभाविक सामान्य संगठन ही अधीत के सम्मिलित (सामयिक) उपयोग तथा व्यवहार की पूर्व शर्त है। उसका परिणाम नहीं। जब मनुष्य ने प्रथम बस्ती स्थापित की तब उसका आदिम समाज न्यूनतम तरीकों से किस प्रकार परिवर्तित हुआ था, विभिन्न बाह्य, जलवायुगत, भौगोलिक, प्राकृतिक इत्यादि अवस्थाओं तथा उनके साथ ही विशेष-विशेष स्वभाव का पनपना उनके उत्तरार्जित चरित्र पर निर्भर करता है। स्वाभाविक तौर पर समाप्त हो गये उत्तरार्जित समाज, यदि [illegible] है तो कुछ रक्त धारा, रीति-नीति इत्यादि के सामाजिक बन्धन, जीवन धारण के तरीकों का उपभोग एवं पुनं उत्पादन करके तथा अनुगत अभिव्यक्ति देकर या इसे विकसित करें, इस प्रकार के सभी कर्मकांडों की प्राथमिक पूर्व शर्त है। (कृषक-कर्म, शिकारी, पशु जोती आदि के कर्मकांड) अधीन व विराट प्रयोगशाला, विराट [illegible] है [illegible] के साधन तथा उपकरण दोनों का ही जुगाड़ करती है, तथा कबीलों के [illegible] पर सामान्य-बन्धन को [illegible] करती है। इसके बाद मनुष्य का [illegible] है। वे [illegible] कबीले के सभी सदस्यों, जो [illegible] द्वारा उत्प- [illegible] पूर्व[illegible] कर के उस पर सामूहिक अधिकार जमाते हैं। जिसे [illegible]

अर्थ में कोई व्यक्ति विशेष इन समस्त कबीलों का सदस्य है (कार्यतः या रूपकार्य) में, वह अपने को मालिक या अधिकारी समझता है। वस्तुतः इन समस्त पूर्व शर्तों के अन्दर ही श्रम की प्रक्रिया में उपभोग का काम चलता है कि पूर्व-शर्तें श्रम की उपज नहीं है बल्कि इसको स्वभाविक या स्वर्गीय पूर्व शर्त के रूप में लगती है ( पृ ७८-७६ ) यही है एक प्रकार का समाज जो किसी न किसी समय विश्व के प्रत्येक हिस्से का अंग था। यहां श्रमिक तथा श्रम की पूर्व शर्तों के मालिकों के बीच कोई द्वन्द नहीं था। समाज का प्रत्येक सदस्य एक ही समय एक श्रमिक तथा श्रम की शर्तों का मालिक भी है। वहां शोषक और शोषित के सम्बन्ध नाम का कुछ नहीं था। मालिकाना और श्रम सभी सामूहिक था। इसीलिये वहां आदिम कम्यूनिज्म का स्वर्णयुग है जहां मनुष्य-मनुष्य के बीच पूर्ण समता थी।

जब इस प्रकार का आदिम संगठन टूट गया तथा नये शोषण के सम्बन्ध स्थापित हुए तभी कुछ नये समाज के अर्थनैतिक ढांचे भी स्पष्ट हुये। आदिम साम्यवाद निश्चित रूप में क्रीतदास प्रथा द्वारा स्थानान्तरित होगा जो फिर पूंजीवाद द्वारा स्थानच्युत होगा। यह यान्त्रिक मार्क्सवाद यहीं पर आकर समाप्त हो जाता है। अब प्रकाशित समस्त नोट दर्शाते हैं कि मार्क्स के अनुसार आदिम कबिला-समाज प्रस्ततः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्राचीन क्लासिकल, (ग्रीस और रोमन) जार्मनिक, स्लावनिक तथा ऐशियेटिक।

इन चारों प्रकारों के उल्लेख से इस प्रकार अर्थ करने से नहीं चलेगा कि इसके अलावा और कोई प्रकार नहीं था। यह सिर्फ इतना ही दिखाते हैं कि मार्क्स को मात्र तीन चार पूंजीवादी ढांचो का तथ्यगत अनुसंधान मिला था।

"प्राचीन क्लासिकल, उन समस्त नगरों का इतिहास है जो जमीन तथा खेती पर मालिकाने के आधार पर निर्मित हुए थे, ऐशियन इतिहास शहर और ग्राम की अवि-भाज्य एकता का इतिहास है। (बड़े शहरों को ठीक से यदि कहा जाय तो राजाओं के आवास स्थान के रूप में देखना होगा, उस समय के अर्थनैतिक ढांचों पर जबरदस्ती लादा गया); मध्य युग (जर्मनिक युग) ग्रामांचलों को इतिहास का केन्द्र बिन्दु बनाकर शुरू होता है जिसका आगे विकास शहर एवं ग्राम के बीच विरोध के मध्य होता है; आधुनिक ( इतिहास ) ग्रामांचलों का शहरी करण करता है, प्राचीन काल की तरह शहरों का ग्रामीकरण नहीं।" (पृ ७७-७८)

स्लावनिक रूप, जिसे मार्क्स ने रशियन रूप कहा है, "प्राचीनतम स्वरूप का अपने आधुनिक संस्करण है जो किसी तरह से हो कई विवर्तनमूलक परिवर्तनों के बीच से गुजरा है।" (पृ. १४२) फिर कबीले पर समाज-सम्पत्ति से प्रत्येक विभाजन करने कि[illegible]

जमीन पर खेती तथा उसकी देख-रेख किया करता था, जिसे देखकर पश्चिम के छोटे किसानों के काम करने का तरीका याद आ जाता है" (१४४) मार्क्स ने यह सतर्क करते हुए कहा है कि—

आदिम कबीलों में सभी एक प्रकार के ही नहीं थे। बल्कि सब मिलाकर स्वरूपों तथा युगों दोनों तरफ के विभेदों तथा विकास के क्रमबद्ध स्तरों के बीच ही सामाजिक प्रगति की एक धारावाहिकता की सृष्टि होती है। इन्हीं विभिन्न प्रकारों में एक जिसे अब सब सम्मति से 'कृषि कबीला' कहा जाता है—रसियन कबीले का रूप था। इसी को प्रति आधुनिक कालीन पश्चिमी प्रतिच्छवी है—जर्मनिक कबीला।

'एशिया में भी अफगान इत्यादि में 'ग्रामीण कबीले' थे किन्तु सभी स्थानों पर वे मध्य-कालीन थे। इसीलिए ये समाज के आदिम ढांचे के अन्तिम रूप में थे।" कृषि कबीला समाज के आदिम ढ़ांचे के अन्तिम स्तर के रूप में साथ ही साथ दूसरे चरण के ढांचे में अवस्थान्तरण का स्तर भी था। अर्थात सर्वसाधारण की सम्पत्ति के आधार पर, समाज की जगह व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर समाज के अवस्थान्तरण का स्तर था। आपको यह समझना होगा कि द्वितीय चरण के ढ़ांचे में क्रीत दास तथा भूमि दास प्रथा के आधार पर प्रतिष्ठित समाज का एक धारावाहिक चरण रहेगा।" (पृ. १४४-४५) इसीलिये भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी धारणा के आदि-अन्त के रूप में दास प्रथा-सामन्तवाद-पूंजीवाद या ऐशियेटिक समाज-पूंजीवाद के इन दो सिद्धान्तों में से किसी भी एक को पूरी तरह से स्वीकार लेने से अधिक अमार्क्सवादी और कुछ भी नहीं हो सकता। इन समस्त सिद्धान्तों का बारम्बार उल्लेख कभी भी घटनागत अनुसन्धान के कष्ट साध्य अनुशीलन के स्थान पर काम नहीं कर सकता, जो अनुशीलन भारतीय इतिहास के मार्क्सवादी छात्रों के लिये अति आवश्यक है। निश्चित रूप में ये सब नोट सामान्य तौर पर ऐशियन समाज तथा विशेष कर भारतीय समाज के विवर्तन के सम्बन्ध में यथेष्ट अन्तर-दृष्टि का जुगाड कर देते हैं। "इसीलिये लगता है कि प्राचीन राजतन्त्र जैसे सम्पत्ति की कानूनी अनुपस्थिति की ओर ले जाता है। यह बात सही है कि "इसका आधार अधिकांश हिस्सों में वस्तु उत्पादन तथा कृषि कार्य के एकीकरण से छोटे कबीलों के बीच पनपी कबीले गत या सर्वसाधारण की सम्पत्ति है। कबीले इस प्रकार पूरी तरह से आत्म-निर्भर होकर पनपते हैं तथा इसी के बीच उत्पादन एवं पुनः उत्पादन की समस्त अवस्थाएँ विद्यमान रहती हैं।

मार्क्स ने और कहा है "इस कबीले के उद्‌वृत्त श्रम का एक हिस्सा कबीले के उच्चतम हिस्से के अधिकार में रहता है। जो भाग अन्त में एक व्यक्ति की सम्पत्ति के रूप में दर्शित होता है। यह उद्‌वृत्त श्रम नजराना तथा एकता के गौरव के रक्षार्थ साधारण

श्रम—दोनों प्रकार का ही कुछ अंश स्वैर सार्वजनीय शासन को तथा कुछ अंश देवता रूपी काल्पनिक कबीला एकता को दिया जाता है।" (पृ:७०)

प्राचीन तथा यूरोपीय दास प्रथा के बीच मार्क्स ने जो तुलना की है वह बहुत ही कौतूहलोत्पादक एवं तात्पर्य पूर्ण है।

"इसीलिये शुरुआत में सम्पत्ति कहने से यही समझा जाता है कि श्रमजीवी (उत्पादनकारी) विषय (या ऐसा विषय जो निज का पुनर्उत्पादन करता है।) के साथ उसके उत्पादन और पुनर्उत्पादन की अवस्थायें हैं। इसीलिये उत्पादन की अवस्था के अनुसार सम्पत्ति विभिन्न रूप बदलती है। उत्पादन का उद्देश्य उसके अस्तित्व की वास्तविक अवस्था के साथ साथ उत्पादनकारी द्वारा खुद को ही पुनर्उत्पादन करना है। और यही अवस्था है क्रीतदास प्रथा, भूमिदास प्रथा इत्यादि जहां श्रमिक खुद ही उत्पादन की स्वाभाविक शर्तों में एक तीसरा व्यक्ति होता है या कबीले की ओर से उपस्थित रहता है।-इसीलिए वहां सम्पत्ति स्वतंत्र रूप से श्रमकारी व्यक्ति के साथ उसके श्रम की वास्तविक शर्तों के सम्बन्ध के रूप में नहीं पहचानी जाती है—यह हर समय द्वितीय स्तर (Secondary) रहती है, प्राथमिक Primary) नहीं, जबकि यह कबीले पर आधारित सम्पद हुआ करती है एवं कबीले में श्रम का ही प्रयोजनीय एवं अवधारित फल हुआ करता है (प्राचीन साम्राज्य दास प्रथा के साथ इस प्रकार की दास प्रथा का मेल नहीं हो सकता, इस दास प्रथा पर मात्र युरोपीय दृष्टि से ही विचार करना पड़ता है।", पृष्ठ ६५)

यूरोपीय देशों की तरह ही भारत मे भी—आदिम साम्यवाद से दास प्रथा— इस प्रकार से दिखाने के प्रयासों की असंगतता को मार्क्स ने इसी प्रकार स्पष्ट किया है। किसी किसी प्राचीन देश में किसी भी प्रकार की दास प्रथा क्यों न पनपी हो, वह प्राचीन ग्रीस एवं रोम प्रथा से अलग प्रकार की है। उपरोक्त उदाहरणोनुसार पश्चिम एशिया मे भी जिस प्रकार प्राचीन दास प्रथा स्थापित हुई थी, भारत मे उस प्रकार नहीं पनपी। भारत मे समाज विकास ने एक सम्पूर्णतः अलग धारा का अनुसरण किया है।

पुरानी तथा युरोप की क्रीतदास प्रथा पर मार्क्स का प्रासंगिक मन्तव्य हमें इसकी अन्तर्दृष्टि से अधिक कि किस प्रकार विभिन्न तरीकों से आदिम कबीला समाज समाप्त होता है तथा श्रेणी-विभाजित समाज पनपता है, और कुछ नही देते।
कबीला-सम्पत्ति के अन्दर ही किस प्रकार विभिन्न तरीकों से राष्ट्रीय और व्यक्तिगत सम्पत्ति पनपती है तथा किस प्रकार उसका विकास कबीला-सम्पत्ति के बीच दरार पैदा करता है, इसी पर विचार करते हुए मार्क्स ने कहा है—

"वास्तव: ऐतिहासिक रूप सबसे अधिक दिनों तक अन्दरून दुरुस्त के साथ कायम था।

इसका कारण वह मूल नीति ही थी, जिस पर वह प्रतिष्ठित था। ये नीति थी, व्यक्ति कबीले से *अलग न होने पाये*; उत्पादन-चक्र अपने आपमें पूरा था; कृषि तथा हाथ के काम मे एकता इत्यादि। यदि कोई व्यक्ति, कबीले के साथ अपने सम्बन्धो में परिवर्तन *लाता है* तो वह अपने कबीले तथा निजी अर्थनैतिक आधार में परिवर्तन एवं नुकसान लाता है दूसरी ओर अर्थनैतिक आधार में यह परिवर्तन *अपने द्वन्द द्वारा* गरीबी इत्यादि की सृष्टि करता है।" (पृ ८३)

एशिया मे "यह दीर्घ दिनों तथा दृढ़ता से कायम रहना" कैसे सम्भव हुआ था! भारत के विषय में एक बात का निश्चित रूप मे उल्लेख किया गया है— वहां वर्ण-भेद ने एक विशेष आवश्यक भूमिका अदा की है। मार्क्स ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रासंगिक मन्तव्य दिया है,

"प्राचीन राष्ट्रों में उपजातियों का या तो आत्मीय *या फिर स्थानीय जुड़ाव* में से कोई एक *पनपा था*। आत्मीयता पर आधारित उपजातियां ऐतिहासिक दृष्टि से स्थानीयता पर आधारित उपजातियों की पूर्ववर्ती थी तथा प्राय: सभी जगह में यह स्थानीय आधार द्वारा *स्थानच्युत* हुई है। उनका सबसे अन्तिम एवं दृढ़ रूप था वर्ण-भेद प्रथा अर्थात् एक से दूसरे का अलगाव, उपजातियों में असवर्ण विवाहों का लोप, पूरी तरह से अलग मर्यादा के साथ *अपरिवर्तनीय* वृत्ति सह प्रत्येक का निजत्व बिल्कुल अलग (गुरुत्व जोड़ा गया है) (पृ. ७७)

फिर, "सम्पत्ति की समस्त आदिम शक्ति कार्यत. उत्पादन *नियन्त्रकारी* विभिन्न वास्तविक विषयों के साथ सम्पत्ति के सम्बन्ध से मिल जाती है। और ये सब है, कबीले के विभिन्न रूपो का अर्थनैतिक आधार एवं उसके अनुसार कबीले के विशेष स्वरूपो का पूर्व अनुमान। एक बार श्रम को उसके निजी उत्पादन की वास्तविक अवस्थाओ मे स्थापित करने पर इन स्वरूपों में उल्लेखनीय परिवर्तन आते हैं। जैसे क्रीतदास प्रथा तथा भूमि दास प्रथा मे ) जिसके फलस्वरूप १ न. इसके अन्तर्भुक्त सम्पत्ति के समस्त रूपो का सामान्य इतिवाचक चरित्र ( भूमि सम्पत्ति ) समाप्त हो जाता है एवं इसीलिए उनका खुद का भी खात्मा हो जाता है २ न. (औजार सम्पत्ति) के विषय मे कहने पर–अर्थात् उसकी औद्योगिक-दक्षता एव उसी के अनुसार श्रम की औजार विषयक सम्पत्ति जिसके अन्दर विशेष प्रकार का श्रम, श्रम की शर्तें विषयी सम्पत्ति के समान हुआ करता है, वह स्पष्टः क्रीत दास प्रथा तथा भूमि दास प्रथा को ठुकराता है। सम्भव है कि वह वर्ण-भेद रूप के बीच कार्य-कारणगत नैतिवाचक विराम की ओर ले जाय।" (अन्त के बल को जोड़ा गया है) (पृ. १०१-१०२)

पाण्यीयता पर आधारित कबीलों की मुश्किल से परिवर्तनीय वर्ण-भेद प्रथा में परिवर्तित होकर सम्पत्ति दो प्रकार के रूपों के कार्य-कारणगत नैतिवाचक विकास की ओर ले जाती है एवं अन्त में एक ऐसे समाज-अर्थनैतिक ढांचे का निर्माण करती है जो सबसे अधिक दिन एवं सबसे स्थायी रूप में कायम रहता है, अर्थात् जो परीक्षा मे सबसे अधिक दृढ़ रूप में खड़ा रह सकता है—यह है भारतीय इतिहास के विषयों की ओर मार्क्स के कुछ इंगित। निश्चित रूप में प्राप्त घटनागत अनुसन्धानों की रोशनी मे अपना काम जारी रखने तथा उसकी सत्यता की जांच करने के काम मे भारतीय इतिहास के छात्रों तथा विद्वानों के लिये ये सभी काफी लाभदायक है। इसीलिये मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रोग्राम मे कहा गया है।

"यद्यपि भारतीय समाज पूंजीवादी पद्धति से विकसित हो रहा है, फिर भी अभी भी इसमें पूर्व-पूंजीवादी समाज के प्रभावशाली तत्त्व विद्यमान हैं। उन्नतिशील पूंजीवादी देश जिस प्रकार वर्धमान बुर्जुआओं द्वारा ध्वंस किये गये पूर्व-पूंजीवादी समाजों के ध्वंसावशेषों पर स्थापित हुए है, भारत में ऐसा न होकर भारत का पूंजीवाद पूर्व-पूंजीवादी समाज के ऊपर ही स्थापित हुआ है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद, जिनका शासन एक शताब्दी से भी अधिक दिनों तक स्थायी रहा है तथा भारतीय बुर्जुआ वर्ग, जिनके हाथ में १६४७ में सत्ता आया है इनमे से किसी ने भी पूर्व-पूंजीवादी समाज पर ध्वंसात्मक आघात नहीं किया। जब कि वह पूंजीवादी समाज के स्वाधीन विकास तथा समाजवादी समाज द्वारा उसका सहजता से स्थानांतरण के लिये नितान्त जरूरी था। इसीलिये वर्तमान भारतीय समाज इजारेदार पूंजीवाद के आधिपत्य के साथ ही वर्ण भेद साम्प्रदायिकता तथा उप-जातीय व्यवस्था का एक विशेष मिश्रण है। इसीलिये पूर्व-पूंजीवादी समाज को नष्ट करने के लिये उत्साही समस्त प्रगतिशील शक्तियों को एकबद्ध करने की जिम्मेदारी तथा वैसा करके जनतान्त्रिक विप्लव के काम को शीघ्र सम्पन्न करने की स्थितियां तैयार करने तथा समाजवाद की ओर अवस्थान्तरण के लिए स्थिति तैयार करने का दायित्व श्रमिक वर्ग तथा उनकी पार्टी का है।"

भारतीय इतिहास के मार्क्सवादी विद्वानों का यह दायित्व है कि उन्हें भारतीय इतिहास की शीघ्र स्थायी हो गये समस्त घटनागत अनुसन्धानों का वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा भारतीय समाज मे पूर्व-पूंजीवादी ढांचे की "सबसे अधिक स्थायी एवं सबसे अधिक दृढ़ रहने की" मार्क्सवादी समझदारी को समृद्ध करना होगा एवं अति प्राचीन काल से वर्तमान काल तक के भारतीय इतिहास को नये सिरे से सजाना होगा।

*

—अनु: सरला भादानी

# फिर एक और यात्रा

*

हरीश भादानी

---

गिरेगिट उठवाते रहने की हविस
और खाइयों से
खुले धरातल पर
आ जाने की कशमकश
एक ही चेहरे को
  दो आदतों का
  किया गया माने है-जिन्दगी
और मेरे दोस्त!
जिन्दगी के लिए
  इन दोनों को
जद्दो जहद का ही परिणाम है
मनु-इड़ा से आज तक
मेरा और तुम्हारा पहुंच जाना;
मैं और तुम
साक्षी रहे हैं, आज भी हैं
  सही को गलत
और गलत को सही बनाकर
इतिहास होती इस जुबान के,
  चिपकाते ही रहते हैं
इसी की चिंदियों के दमाग और आंखें

वार-बार जन्म लेते
एक-दूसरे के शरीरो पर;
मैं और तुम
ब-हैसियत भोक्ता और साक्षी
आज फिर
तक़ाजों की बुनियाद पर
पिरेमिडों के मलवे से
खाइयां पाट कर
एक ही ऊंचाई के घर
बना लेने के ख़याल से
आवाज़ और हरफ़ की मानिंद
जुड़े रहने वालों को
ग़लत करार दे
इससे पहले
उतारने होंगे तुम्हे और मुझे
अपने चेहरे ही चेहरे
जिनको मोटी तहों के नीचे
दवाये रहते हैं
अपनी असलियत,
उठाना ही होगा
कपड़ों से परहेज रखने वाली
असलियत से सामना कर लेने का खतरा!
बांधने होंगे
तम्हें मेरे-मुझे तुम्हारे
और उन सबके भी
हाथ-पांव और ज़ुबाने
जो नंगी हक़ीक़त से सामना हो जाने पर

एक ओर से
ब्रह्मानंद सहोदर का सुख
दूसरी ओर से
मंच के चारों ओर जमात जोडकर
जुगुप्सा से ढ़ांपते रहने की
करते हैं नपुंसक ऐय्यासी,
तुम्हें और मुझे ही देनी है
फिर एक संज्ञा-उन लोगों को
जो खुरदरी अंगुलियां आंज-आंजकर
खुलवाते हैं आंखें
कतरा-कतरा ढ़ुलका कर ही
देखते है ये
कामदार छतें ओढ़े शहतीर
छीली ही जाती हैं जिनसे
गोद की गर्मी ले लेने की इनकी ललक,
पत्थर पकवाते हैं वे
इनकी जठराग्नि से,
करते हैं इनमें
जवान बीमारियां,
इनसे इनके लिए नहीं
सदी दर सदी
अपना होना ही बनाए रखने
करवाते रहते हैं यात्राएं,
पोपते हैं इन्हीं के बहाने
प्रेत बनकर
गरिमाएं भोगने की प्रवंचनाएं जो लोग,
बता, मेरे दोस्त!

किस सम्बोधन से पुकारें उन्हें आज
मैं और तुम,
लाशें हैं, अपाहिज हैं
सारे के सारे अक्षर
सिखाई जाती भाषा के ज़खीरे में,
ढोने और फेंकने से होता है
मेरा और तुम्हारा
थक टूट जाना,
यूं नहीं होने देना है
मेरा और तुम्हारा होना तो
आ! एक बार! केवल एक बार करलें
अपने ही भीतर जीवित
मैं के
रूबरू हो जाने का हौसला,
सीधे सवाद के नाखून
खरोंच लेंगे
मेरी और तुम्हारी झिल्लियां,
असल चेहरे के सामने
रख देंगे वे अल्फाज़
जिन्हीं से बोध पाएंगे
मैं और तुम
इकाई से दहाई का फ़र्क़
फ़र्क़-अतीत के वर्तमान का!
वर्तमान के भविष्य का!
फ़र्क़-जीवैषणा और गवैषणा का!
अर्थात् इन और उन लोगों का

तब न तुम न मैं
कर पाए हरफ़गीरी इन लोगों पर,
बहुत सम्भव है
भीतर तक लकीर जाएं
तुम्हें और मुझे
सूरज के हाथों ही सांझ से पहले
रेत दर रेत आंकते पांवों पर
ठहराव का पहाड़ रख दिये जाने से
दुखते हुए ये लोग,
झुलस-जाने के भय से
न तुम न ही मैं
सम्हाल पाए अपनी हथेलियों पर
बदलाव को एक और जमीन
बिछा देने पर आमादा हरावल का
बिना आहट किए ही
दरार कर अलगा जाने से
फैलाती हुई इनकी खोज,
कोरे आकाश की तरह
चौड़ा-चौड़ा जाती आंखों में
फिर एक और खोज भर लेने की ललक
ठहराव के समय पर
सवाल ही सवाल न उठाने लगें,
फट गए आग पर
दर सब की दूरियां या
सुधार ही न लेते रहें ये लोग,
या, मैं और तुम
करीब और करीब होकर

बोलने लगे—
जिरह बख्तर को नही
हाड मास की देहों को कहा जाता है
हरावल,
एक और कतार जुडी होती है इससे
शरीर और रोटी भोगने वालों को
विवश करती है
नेजे खुभा-खुभा कर जो
समझ के रिश्ते नकार देने,
हाथ-ब-हाथ
कदम-ब-कदम रचे-किये
सब कुछ को उलट देने,
और ले लेती है हलफिया बयान-
जिदगी की लडाई को
अपने ही लहू की हदों में बाध देने,
निर्णायक दौर का धीरज
नही होता इस कतार मे
नही समझ पाती यह कि-
एक ही रग होता है लहू का,
एक ही प्रकार के होते है तकाजे,
कही से लगे आग
झुलसती ही है एक ऊंचाई,
भभूके हुए दमाग
विराट हो जाने को ही
होते है दहाइया
और बेइरादा ही बन जाती है
बित्ता भर समझ

एक बालिश्त पेट वाली ये कतारें
लड़ाई टूट जाने और
यात्रा के ठहराव का कारण
मगर इन सबका फिर भी
माने नहीं है
एषणा का मर जाना,
यही है आज-आज के ये लोग
और इन्ही की सज्ञा हैं-
मैं-तुम।
थामे रखनी है तुम्हें-मुझे
वर्तमान के भविष्य की तलाश
किया जाना है जिसे यदि
मैं-तुम से
हमारी एक और शुरूआत तो
जब भी लगूं मैं तुम्हें
एक बदशक्ल ठहराव
तोड़दे तू किसी भी कोने से
एक और मुहाना
हहराकर बह जाने,
मुझे भी लगे
महज धुआंती ईंधन जब तू
सांस-सांस कर अगियादूं मैं
और तू ही खोज लाए वे हर्फ़
मैं ही कौन दूं
हमारे आज के हाथों
ऐसी विगलन खोदने वालों पर!!

# इतिहास के दवे पन्ने

✻

मजनू फकीर

---

इतिहास के पन्नों में सोया मजनू फकीर ! सन्यासी विद्रोह का महान नेता मजनू फकीर !

अपने मन में ये वाक्य दोहरा ही रहा था कि जैसे दूर कहीं से आवाज आयी : "क्यों छेड़ते हो मुझे ? विस्मृति के गर्भ में ही पड़ा रहने दो मुझे।"
विस्मृति के गर्भ में ? हां, सचमुच ही तो मजनू फकीर जैसे भारतीय स्वाधीनता के महान योद्धा को विस्मृति के गर्भ में डाल रखा गया है। मगर आज इतिहास के पन्नों में सोया यह महान योद्धा जग पड़े तो ? वह भारतीय इतिहास की गौरव गाथा सुनाने लगे तो ?

इतना सोचना था कि जैसे पहले से कहीं ज्यादा जोर की आवाज आई "तो क्या आज क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स की औलादें यह न कहेंगी कि मजनू दस्यु था, डकैत था ?"

याद आ गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने अंग्रेज शासकों के खिलाफ भारत के किसानों, सिपाहियों, कारीगरों, सन्यासियों और फकीरों के विद्रोह का नाम सन्यासी विद्रोह रखा था। उसने ब्रिटिश शासकों के खिलाफ भारत-वासियों के इस प्रथम विद्रोह को 'हिन्दुस्तान के यायावरों का पेशेवर उपद्रव, दस्युता और डकैती', कहा था। पर वह तो अठारहवीं सदी का उत्तरार्द्ध था, आज तो बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध है। दो सौ साल बीत गये हैं। देश में अंग्रेजों का राज नहीं। अब तो अपने ही देशी भाई राज करते हैं। अब अगर मजनू जागे तो क्या दिक्कत है।
इस तरह का तर्क-वितर्क कर ही रहा था कि इतने जोर की आवाज आई जैसे कोई पूरी तरह जगा आदमी बोल रहा हो : 'क्यों, क्या आज किसानों, कारीगरों और क्रांतिकारियों के संघर्षों को दस्युता, डकैती आदि नामों से पुकारा नहीं जाता ?"
इस बचन को सहसा पर विचार कर ही रहा था कि आवाज आई - मैं पूरी तरह जग गया हूं। क्या सुनना चाहते हो ? देश के स्वाधीनता संग्राम की गौरवमय गाथा ? अच्छा, आओ मेरे साथ।"

और इसके बाद ही जैसे काल का चक्र दो सौ साल पीछे घूम जाता है। आँखों के सामने आ जाता है दो सौ साल पहले का दृश्य।

"ओऽम वन्देमातरम !"

"ओऽम वन्देमातरम !"

एक नहीं हजार-हजार कण्ठों से यही आवाज सुनाई पड़ती है। विभिन्न हथियारों से लैस हजारों किसान, कारीगर सिपाही, फकीर और सन्यासी जैसे एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की बाजी लगा रहे हों। कहाँ जा रहे हैं ये ?

मन्द मुस्कराहट के साथ जवाब मिलता है : वह देखो शैतान का घर ईस्ट इण्डिया कंपनी की कोठी जिसने देश के किसानों, कारीगरों आदि को तबाह कर दिया है। ब्रिटिश सौदागरों के लूट के इस केन्द्र को नष्ट करना ही होगा।

'ओऽम वन्देमातरम'। के नारे बुलन्द होते गये हैं। कोठी पर आक्रमण सामने के दरवाजे से होते ही पीछे के दरवाजे से नाव पर बैठकर अंग्रेज अधिकारी लीसेस्टर भाग निकला। पहरेदार पहले ही उड़न छू हो गये थे।

दृश्य बदला और इस बार सामने थी राजशाही जिले की रामपुर बोआलिया की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कोठी। विद्रोहियों ने शैतानों के इस घोंसले को ध्वस कर दिया। अंग्रेज अधिकारी बेनेट कैद कर विद्रोह के प्रधान केन्द्र पटना भेज दिया गया।
दृश्य फिर बदल गया और इस बार सामने था दीनहाटा ( कोचविहार ) का वह क्षेत्र। सेनापति रुद्रनारायण का पक्ष लेकर आने वाली कम्पनी की सेना और राजवंश का पक्ष लेकर आने वाले विद्रोहियों की सेना। आवाज आई : "देखो, वह विद्रोहियों का नेता।"

"कौन ?"

"सन्यासी रामानन्द गोसाईं। और उधर देखो।"

"वह कौन ?"

"अंग्रेज सेनापति लेफ्टिनेन्ट मारिसन।"

एक तरफ उस वक्त के नये हथियारों से लैस कम्पनी की सेना और तोपखाना और दूसरी तरफ पुराने हथियारों से लैस विद्रोही। कैसे टिक सकेंगे ये देशवासी इन विदेशियों के मुकाबिले में ? तोपों की मार के सामने भारतीयों को भागता देख मन भारी हो रहा था कि तभी आवाज आयी : "मन भारी मत करो। जरा उधर देखो।"

दिखाकर इस आंदोलन को देने वाले महान पुरुषों को दर्शन, सुंदरता ... हूं। दिखा-
मान को दशा से सुनाई पड़ता है : "बढ़ो, जरा कुछ और देखो।"
हम उत्तर बंगाल और नेपाल की सीमा पर पहुंच जाते हैं। विद्रोहियों को दुश्मन के
सामने अंग्रेज सौदागर मार्टिन खड़ा है। इसाक उसे मृत्यु दंड देते हैं। लगातार
पाकर कैप्टन मैकेंजी कम्पनी सेना लेकर आता है : विद्रोही उत्तर की तरफ चले जंगल में चले
जाते हैं। जाड़ा आरम्भ होते ही वे कम्पनी सेना पर टूट पड़ते हैं। सेनापति किथ बड़ी
सेना लेकर मैकेंजी की मदद के लिए आता है। विद्रोही कम्पनी सेना को अन्दर
अन्दर खींच ले जाते हैं और फिर पूरी ताकत से दुश्मन पर टूट पड़ते हैं। किथ मार
जाता है, कम्पनी की सेना नष्ट हो जाती है।

सीन बदलता है। शरद ऋतु में स्वयं मजनू फकीर के नेतृत्व में एक बड़ी सेना पटना
उत्तर बंगाल आती है—बिहार में नई सेना संगठित कर उत्तर बंगाल के कम्पनी
केन्द्रों पर आक्रमण की शृंखला की एक कड़ी। जिला बगुड़ा, गांव मिलबेरी। विद्रो
ज्यों ही इस गांव में पहुंचते हैं मजनू शाह गरज उठते हैं : खबरदार, ग्राम जनता
कोई जोर जबर्दस्ती मत करना। गांव वाले जो खुशी से देते हैं, सिर्फ उसे लो बाकी न
कल जमींदार दयाराम राय की कचहरी लूटनी है। उसे उसकी अंग्रेजपरस्ती का
देना है।"

गरीब ग्रामवासी अपने सामर्थ्य के अनुसार खुशी-खुशी खाद्य सामग्री लाते हैं,
विद्रोहियों को देते हैं। देखता हूं और विद्रोहियों के प्रति ग्रामवासियों के स्नेह को दे
कर मुग्ध होता हूं। तभी सुनाई पड़ता : "इन्हें इस गांव में आराम करने दो। ब
कुछ आगे बढ़ो।"

रंगपुर शहर के नजदीक श्याम गंज के मैदान में अंग्रेज सेनापति टामस बड़ी
कम्पनी सेना के साथ मैदान में डटा दिखाई देता है। विद्रोहियों को देखते ही वह
पर टूट पड़ता है। विद्रोही हार कर भागने दीख पड़ते हैं। टामस अपनी सेना के
उनका पीछा करता है। विजय की खुशी में कम्पनी सेना धड़ाधड़ गोलियां चल
है। जंगल में पहुंचते-पहुंचते उनकी गोलियां समाप्त हो जाती हैं। तभी विद्रोही
पड़ते हैं और कम्पनी सेना पर टूट पड़ते हैं। इस बीच आसपास के किसान भी वि
हियों की मदद के लिए आ जाते हैं। सेनापति टामस कम्पनी सेना के देशी सिपा
को आक्रमण करने का हुक्म देता है, लेकिन वे अपने देश भाइयों पर गोली चला
इन्कार करते हैं। कम्पनी सेना पराजित होती है। टामस मारा जाता है। वि
भाग कर ग्राम में छिपे गोरे सैनिकों को खोज निकालते हैं और विद्रोहियों के हाथ
है। गांव में आने वाले गोरे सैनिकों को किसान पकड़कर मौत के घाट उतार देते हैं
उनकी बन्दूकों पर कब्जा करते हैं।

# वामधर्मी पत्रिकाओं की रचना यात्रा

अरुण माहेश्वरी

इधर के कुछ वर्षों से बिना किसी प्रकार के सशक्त प्रतिरोध के अबाध-गति से समूचे साहित्यिक जगत पर इजारेदारों के हाथों बिके सम्पादकों की रंगीन लिबासों में सजी-धजी पत्रिकाओं का बोल-बाला सा हो गया था। पूंजीवादी स्वार्थों की पोषक इन पत्रिकाओं द्वारा आस्थाहीनता कर्महीनता तथा स्वतन्त्र अभिव्यक्ति या भोगे गये यथार्थ के नाम पर वासना जनित दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति को प्रश्रय दिया जा रहा था। पूंजीवादी औद्योगिक युग की त्रासदी के ऐसे भयावह तथा अतिवादी चित्रण इन पत्रिकाओं की रचनाओं से सामने आ रहे थे, जो विषमताभरी अमानवीय स्थिति के खिलाफ संघर्षशील जमात को प्रोत्साहित या सजग करने की बजाय उन्हें एक भयानक आतंक के धूए की घुटन में समी देने के ही प्रयास थे। इस प्रकार समूचे साहित्याकाश को धुमिल तथा विषाक्त करने की चल रही साजिशों का प्रभाव और तो ओर, कई स्थापित समर्थ रचनाकारों तक को इस दौर की रचनाओं में देखा जा सकता है, जिनके अनुभूति ग्रहण का क्षेत्र-शोषण पीड़न तथा गरीबी से रिसता भारतीय जन-जीवन न होकर विकसित औद्योगिक पाश्चात्य जगत जान पड़ता है।

इन्ही तमाम कुचेष्टाओं के खिलाफ समय-समय पर भारत के कई कोनो से विभिन्न छोटी पत्रिकाओं द्वारा आवाज बुलन्द की जाती रही है तथा साहित्य के माध्यम से सच्चे मानवीय मूल्यों की स्थापना के प्रयास होते रहे है। इसी परिप्रेक्ष्य मे "कथा", "वाम", "समारम्भ", "सामयिक", "प्रचेता" 'ओर' तथा वातायन के इस पुनः प्रकाशन को समझा जा सकता है।

निस्सन्देह अपने उद्देश्य मे इन पत्रिकाओ की सफलता इनके सम्पादकों द्वारा अपनायी गयी दृष्टि की व्यापकता तथा व्यक्त विचारो के साथ सच्ची आन्तरिकता, जो सच्चे तौर पर इनकी प्रेरणा का स्रोत होनी चाहिए, के निर्वाह पर निर्भर करती है। इन पत्रिकाओं का सच्चा ध्येय यदि सही वैज्ञानिक मूल्यों से जन-मानस को जोड़ना न होकर, साहित्यिक राजनीति की उठा पटक की सकीर्ण वृत्ति हो गया, तो और कुछ नहीं पहले

से ही चल रही व्यवस्थाधिकारियों तथा उनके पिट्ठुओं द्वारा अमानवीय कोशिशों को बल मिलेगा।

कई एक तक के प्रकाशित अंकों द्वारा इन समस्त मनचाहे मन्तों के प्रति ये पत्रिकाएं निश्चित रूप से सजग लगती हैं। परिवर्तन की शक्तियों को साहित्य के माध्यम से गौरव प्रदान करने के प्रति आन्तरिक जुड़ाव को 'कथा' के सम्पादकीय वक्तव्य में आसानी से पढ़ा जा सकता है। जहां कहा गया है—"सोचा गया है कि कथा के प्रकाशन द्वारा साहित्यक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में निरन्तर उठने वाले मूल प्रश्नों को वास्तविक, परिवर्तनकारी और सृजनात्मक दृष्टि से देखा परखा जाय तथा परिवर्तन की गति को तेज करने के लिये बिखरी-भटकी प्रवृतियों के सूत्रों को संयोजित करने के प्रयास किये जाय।"

सर्वपंथा तथा निरुद्देश्यात्मकता के प्रति भी मार्कंडेय पूरी तरह से सजग है। उन्हीं के शब्दों में, जेब में लाल मिर्च की बुकनी रखना या चौराहे पर कपड़े उतार कर खड़े हो जाने के चरम निर्णयों द्वारा अस्तित्व प्रदर्शन सिर्फ नाकामयाब ही नहीं, स्थिति पर उलटा असर डालता है।

विकसित रंग-मंच के अभाव में नाटक-विधा से लगभग कटते चले आ रहे हिन्दी साहित्य की ओर ध्यान आकर्षित कराते हुए कथा में हिन्दी संस्कृत नाटकों की चर्चाएं काफी महत्वपूर्ण हैं। ये चर्चाएं निस्सन्देह समस्त रंग-मंच के पनपने तथा समर्थ नाट्य-कारों के उभरने की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में सफल होंगी।

इसी प्रवेशांक में ज्ञान प्रकाश की कहानी "एक और ईश्वर" में आज की व्यवस्था के निम्न मध्यम वर्गीय जीवन की भीतरी तहों में बस रही [illegible] की विवश स्थिति का बहुत ही सजीव चित्र उभर कर सामने आता है। किन्तु सतीश जमाली की "युद्ध" कहानी में मोची राम का युद्ध [illegible] उस [illegible] में [illegible] लगता है कि उसके पीछे की मानसिकता का स्पष्ट [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] युद्ध से [illegible] स्थिति की [illegible] है [illegible] की [illegible] है, या डटकर सामना करने की प्रेरणा को दृढ़ता का [illegible]?

'सारथि' का तृतीय अंक [illegible] के [illegible] के द्वारा [illegible] आंदोलन के विरुद्ध [illegible] की [illegible] से [illegible] का सफल प्रयास है।

[illegible] वैज्ञानिक आधार पर [illegible] तथा [illegible] दृष्टि का [illegible] के [illegible] का [illegible]

जुड़ाव की सामयिक के सम्पादकीय में उठायी गयी मांग प्रगतिशील मुखौटाधारी घोर कलावादी चिन्तक नामवर सिंह तथा युग परिवर्तनशीलता के स्वरूपों को पूरी तरह नकार देने वाले रामविलास शर्मा जैसे प्रगतिशील रंगों के महायोगियों के परिप्रेक्ष्य में, साहित्य-चिन्तकों तथा सर्जकों की साहित्य क्षेत्र में गतिविधि को सही दिशा में दिशान्वित करने की बहुत ही सही मांग है। इसी क्रम में नम्बूदिरीपाद का अनुदित लेख संस्कृति और समाज पर सही वैज्ञानिक चिन्तन के मार्ग को प्रशस्त करता है। इसराइल की कहानी 'आदमी जिन्दा है' तथा नागार्जुन की कविता ''अब तो बन्द करो हे देवी, यह चुनाव का प्रहसन'' पिटारे में बन्द कर दी गयी शोषित-दलित जनता की आवाज को आक्रोश सहित अभिव्यक्ति देने में पूरी तरह से सफल रही है। इसी कारण, परिवर्तन की लड़ाई के अन्तिम चरण तक पहुँचने की यात्रा के बीच के ऐसे मुकामों के अटल अनुभव, जिनसे निचोड़ा गया ज्ञान तत्व चेतना को प्रखरता प्रदान करता है भविष्य को स्वरूप देने के सही मार्ग को चिन्तन में स्पष्ट कर देता है, संवेदना के स्तर पर ग्रहण करके उसे कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने के साहित्यिक कर्म द्वारा इसराइल की ''सोनिया'' संघर्ष के हर मोड़ पर मशाल बन सकती है।

"समारम्भ" भैरव प्रसाद गुप्त की सम्पादन कुशलता का परिचय है जिसमें प्रकाशित समस्त रचनाएं वैचारिक तारतम्यता तथा समान स्तर के निर्वाह में खरी उतरती है। "आर्जे लुकाच" पर भैरव प्रसाद गुप्त का लेख अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित इस व्यक्तित्व परस्पर विरोधी स्वरूपों को उद्घाटित करने में सफल हुआ है। ऐसे व्यक्तित्वों के सहारे मार्क्सवाद-लेनिनवाद को विकृत करके प्रस्तुत करने की प्रतिक्रियावादियों की कोशिशों का प्रतिरोध करना सच्चे क्रान्तिकारी मार्क्सवादी चिन्तक का प्राथमिक कार्य है।

समसामयिक घटनाक्रमों से अनुभूति ग्रहण करके जब सृजक उसे वैज्ञानिक चिन्तन द्वारा नियन्त्रित आन्तरिक आक्रोश तथा आवेग के साथ कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है तो बात सिर्फ सामयिक महत्व की नहीं रह जाती, बल्कि वह शाश्वतता ग्रहण कर लेती है जो युग युगान्तर तक अनुरूप घटनाक्रमों से निचोड़ निकालने की प्रक्रिया को तो स्पष्ट करती ही है, साथ ही साथ सही निष्कर्षों तक ले जाने वाले ज्ञानात्मक अनुभवों के रूप में सदा अमर हो जाती है। अपने निजी अनुभवों के आधार पर वेणुगोपाल द्वारा समारम्भ के लिये लिखा ''कविता कुछ बातें'' इसी सत्य की पुष्टि करता हुआ सृजन-साहित्य सम्बन्धी सही चिन्तन प्रणाली प्रस्तुत करता है।

चन्द्रभूषण तिवारी का लेख ''समकालीन हिन्दी कहानी भिन्नता के सही धरातल'' समसामयिक रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं को समझने के लिए मापक के रूप में प्रकट होता है। इस लेख द्वारा नामवरसिंह जैसे आतियां बुतकरों को सही पहचान प्रस्तुत की गयी है।

समाकर ही शोषण अत्याचार तथा समाज अमानवीय स्थिति से जिनसे इस समाज व्यवस्था के जिसमें पूरी मानव प्रगति के आधार समाज के इशारा किये से उनकी समस्त मानवीय सहज बोधों तक के छीन लेने की साजिश की गयी है वे वास्तविक प्रगति स्वरूपों को पहचाना जा सकता है और फिर इसी शोषण जीवन से पीड़ित बहुधा मुफस्सल को दुर्दम रूप में पैठ कर अपनी स्मृतियों से भुलाने वाले बुद्धिजीवियों सर्जकों के प्रति एक तीखा व्यंग्य किया गया है। क्या घोर दारुण विडम्बना है कि कविता कथा आज शहर शब्दों में माहिर अंग्रेजी पीढ़ी तह कर महानगर अनुभूतियों को अंतिम दिखाकर पेश करने वालों के पत्रों में फंसती चली जा रही है। जीवन की जिनसी यथार्थता से सम्पूर्णतः कट गये उन मसीजीवियों की वास्तविक स्थिति यही है शब्द रचना की मोर-द्रोही नौकरी में माहिर उनकी यात्रा क्रूर षड्यन्त्रों से यथास्थिति के पुख्ते इस्तमाल। में होती है।

इसी अंक में भैरव प्रसाद गुप्त के लेख "समाजवादी क्रान्ति की तैयारियां : राजनीतिक विभ्रम के बीच और बाहर" के कई अंश कुछ अधिक विस्तार से व्याख्या की मांग करते हैं। इस लेख में दिखाये गये भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन पर हर वक्त सवार रहे अतिवादी दोषों का विश्लेषण करते हुए खुद गुप्त जी ही किसी प्रकार की अतिवादिता के शिकार हो गये नजर आते है इसी वजह से बावजूद कई तथ्यों का सहारा लेने पर भी भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास का उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण अति बनावटी जान पड़ता है। केरल तथा पश्चिम बंगाल के संयुक्त मोर्चा सरकारों पर व्यक्त किया गया इनका मन्तव्य ऐतिहासिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जनतान्त्रिक क्रान्ति की रणनीति की इनकी मौलिक समझदारी पर प्रश्न चिन्ह लगा देने के लिए काफी है। यह जानकर रखना चाहिए कि केरल तथा पश्चिम बंगाल की संयुक्त मोर्चा सरकारों का उद्देश्य निश्चित रूप से तत्काल सशक्त संघर्ष छेड़कर क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिये असंगठित जनता को समाजवादी क्रान्ति के मैदान में ढकेल देना नहीं था बल्कि समूचे भारत में जनतान्त्रिक आन्दोलन को तीव्रता प्रदान करने के सशक्त हथियार के रूप में काम करते हुए भारत में समाजवादी क्रान्ति के पहले के आवश्यक चरण जनतान्त्रिक क्रान्ति के सम्पन्न होने के मार्ग को प्रशस्त करना तथा समूचे भारत व्यापी स्तर पर वर्ग संघर्ष को तेज करना था। अपने इस काम में इन सरकारों को आशातीत सफलता भी मिली। इन संयुक्त मोर्चा सरकारों का काम किसी भी रूप में आकस्मिक या घातक नहीं रहा बल्कि देश की परिस्थितियों के सही विश्लेषण के आधार पर जनतान्त्रिक आन्दोलन के पक्ष में यही अपेक्षित था। संयुक्त मोर्चा सरकार बन जाने मात्र से समाजवादी क्रान्ति के पूरे हो जाने के स्वप्न देखने वाले अति उत्साही लोगों की अवैज्ञानिक समझदारी को ही इन संयुक्त मोर्चा सरकारों के परिणाम निराशा-

जनक लग सकते हैं, वरना यह सच है कि शासक दल के आगाडम्बरों द्वारा रचे जा रहे मायावी जालों में पूरी तरह से भटक जाने से बचाने के लिए आज भी संयुक्त मोर्चा सरकारों को मिसाले भारत के लड़ाकू किसान मजदूरों के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम कर रही है तथा इन्हीं सरकारों की बदौलत ही शासक दल पश्चिम बंगाल में अर्द्ध फासिस्ट दमन चक्रों का सही स्वरूप धीरे-धीरे स्पष्ट होता जा रहा है।
संयुक्त मोर्चा सरकार के विरुद्ध चन्द असन्तुष्ट नवयुवकों के प्रतिवामपंथी नक्सलवादी भटकाव को क्रांतिकारी आंदोलन की परम्परा से नहीं जोड़ा जा सकता। सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सही क्रांतिकारी रणनीति की समझ ही सच्चे मार्क्सवादी विचारक का सबसे मजबूत हथियार हुआ करती है, और भैरव प्रसाद जी उसी की अवहेलना करते नजर आते हैं।

इस प्रकार व्यापक दृष्टि से इन सभी पत्रिकाओं का निरीक्षण करने से ज्ञात पड़ता है कि विभिन्न स्थानों से निकलने के बावजूद ये समस्त पत्रिकाएं आज के व्यवस्था विरोधी, दिशाहीन से दिख रहे हैं। आक्रोश को एक सच्ची क्रांतिकारी दिशा में मोड़ देने के लिए एक मंच से [illegible] सकती है।

अब शुरू हो गये इस सिल-सिले को जीवंत बनाये रखने के लिए सबसे बड़ा अनुरोध यही है कि इन पत्रिकाओं के संचालक-गण हर हालत में जुमलेबाजी के रोग से बचते हुए साहित्यिक दलबाजी से बनने वाले उस दलदल के निर्माण के प्रति सजगता बरतें जो उभरती हुई सच्ची क्रांतिकारी प्रतिभाओं के लिए घातक हुआ करता है।

* * *

# विवेचन

*

## अज्ञेय की काव्य तितीर्षा : श्री नन्दकिशोर आचार्य

सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर
मूल्य : दस रुपये । पृष्ठ : १४१ :

---

अज्ञेय जी पर आलोचकों ने काफी लिखा है लेकिन अज्ञेयजी के साथ तादात्म्य कर एक पाठक की सहानुभूति और उदारता के साथ श्री नन्दकिशोर आचार्य ने ही "अज्ञेय की काव्य तितीर्षा" प्रस्तुत की है। आचार्य जी का मकसद "रसास्वादन और समझना" है मूल्यांकन करना नहीं। लेकिन लेखक मूल्यांकन से बच नहीं सका है, हां, वह 'रसास्वादन' की ओर अपनी रुझान कायम रख सका है। जहां तक 'समझ' का प्रश्न है, वह तो अपनी अपनी होती है !

'उदार सहानुभूति' से जहां कवि के मन को पकड़ने में आराम हो जाता है, वहीं वस्तुगत मूल्यांकन में बाधा पड़ती है क्योंकि 'उदार सहानुभूति' की मात्रा कब कितनी बढ़ जाय कि लेखक सम्मोहित हो उठे, इसका कुछ ठीक नहीं रहता। इसीलिए आलोचना में 'आलोचनात्मक सहानुभूति' अधिक आवश्यक होती है। इस किताब में अच्छाई यह है कि आजकल जब अज्ञेय के अनुयायी और उनसे आतंकित 'सप्तकिए' उन्हें नकार रहे हैं, तब यह किताब, दूसरे ध्रुव को प्रस्तुत करती है। इससे निस्संग अन्वेषक और आलोचक को, अज्ञेय के विषय में ध्रुवीकृत मूल्यांकनों का जायजा मिलेगा, और वह अपनी वस्तुगत राय बना सकेगा।

अपनी 'उदार सहानुभूति' की अधिकता के कारण नन्दकिशोरजी अज्ञेय के पक्ष की प्रसिद्धियों को अविचारित रूप से ही स्वीकार कर लेते हैं। मसलन, 'सोनमछली' कविता के बिम्बों की प्रशंसा डा० नगेन्द्र ने की है और डा० नामवरसिंह भी इस रचना के प्रशंसक हैं, उधर धर्मयुग के ताजा लेखों में डा० रामविलास शर्मा भी 'सोन मछली' की दबी जुबान से प्रशंसा कर गये हैं इस स्थिति अगर नन्दकिशोर जी 'सोनमछली' में अज्ञेय की कलात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता लगे और 'अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह रचना उन्हें सुन्दरतम' जंचे तो यह स्वाभाविक है। लेकिन 'सोन मछली' में बिम्ब ( मछली और रूप

का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव ) की सटीकता के बावजूद 'अनिवृति' की सुन्दरता तब मानी जाती, जब उसमें आशय की 'अस्फुटता' न होती बिम्ब के तुरन्त बाद एक सूक्ति भी जड़ दी गई है —

हम निहारते रूप, कांच के पीछे
हांफ रही है, मछली
रूपतृषा भी ( और कांच के पीछे )
है जिजीविषा ।

एक 'अज्ञेयता' इस अभिव्यक्ति में है। संक्षिप्तता वहीं प्रशंसनीय होती है, जहां ऐसा न लगे कि कुछ अनिवार्यतः कहने को रह गया है। कुछ और कह कर अंतिम सूक्ति जोड़ी जानी चाहिए थी ( रूपतृषा भी है जिजीविषा )। इस अज्ञेयता या अस्फुटता से एक रहस्यमयता और विविधार्थकता तो आ गई है, जिसका उल्लेख आचार्यजी ने नहीं किया लेकिन इससे 'अनिवृति' की पूर्णता कैसे साबित हो गई ? अनिवृति या तो सामग्री या कथ्य के विस्तार से सरस होती है अथवा वहां जहां कथ्य को जान बूझकर अनबूझा रखा गया हो। इससे कथन की रहस्यमयता ( रहस्यवादिता मैं नहीं कह रहा ) तो प्रमाणित करती है लेकिन 'अनिवृति' की पूर्णता का तर्क बेबुनियाद है। खेद है, डा० नगेन्द्र, डा० नामवरसिंह और डा० रामविलास शर्मा आदि किसी ने भी इस अस्फुटता की ओर ध्यान नहीं दिया।

नन्दकिशोर जी ने अज्ञेय की अनेक कमजोर रचनाओं को अच्छी रचनाओं के साथ उद्धृत किया है। पाठक उलझन में रहेगा कि इनमें उत्कृष्ट क्या है, निकृष्ट क्या है—

ओस का पुतला हूं मैं
जरा से बना हूं और
मरण को दे दिया गया हूं
पर एक जो प्यार है न
उसी के द्वारा जीवनमुक्त मैं किया गया हूं।

यह 'रचना' नहीं, वक्तव्य है। इस तरह के वक्तव्य, दुष्यन्त [illegible] और [illegible] कविता के नाम पर इस किताब में कई जगह उद्धृत हैं। 'हजार सहानुभूति' के बाद [illegible] कविता [illegible] होने लगती है!

'कागज के चार द्वार' की रचनाओं में कुछ आकर्षण है लेकिन [illegible] आचार्य की [illegible] और खुला भाव [illegible] है [illegible] और [illegible] सहानुभूति 'अपनों' को [illegible] है।

अज्ञेय की शक्ति है, जीवन को अपने विशिष्ट कोण से देखने की सामर्थ्य या चिंतनशीलता, रचना प्रक्रिया की दृष्टि से उनकी शक्ति है, छायावादी काव्यभाषा से क्रमशः अलग होने की कोशिश में, गद्य के निकटतम बिन्दु को कविता में छूने की प्रवृत्ति, नए बिम्ब, पुराने बिम्बों का नया इस्तेमाल वगैरह। इस कोशिश से अज्ञेय की काव्यभाषा 'सहज' रह नहीं सकती थी, आवश्यक भी नहीं था लेकिन नन्दकिशोर जी अज्ञेय की भाषा की 'सहजता' की प्रशंसा करते हैं। अज्ञेय जी में नया गढ़ने का मोह है, सहजता के प्रति उनकी आसक्ति नहीं है, वे 'गढ़िया' कवि हैं, 'सहज' कवि नहीं:—

बावरा अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं, तुझे सब आखेट है!
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौंस का
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जाएगा?
ला मैं खोल देता हूं कपाट सारे
मेरे इस खण्डहर का शिरा शिरा छेद दे
आलोक की अनी से अपनी
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे
विफल दिनों की तू कलौंस पर आंज जा
मेरी आंखें आंज जा कि तुझे देखूं
देखूं मेरे मन में कृतज्ञता उमड़ आए
पहनूं सिरोपे से ये कनकतार तेरे, बावरा अहेरी!

रेखांकित तद्भवों और तत्समों का यह तिलतदुनी संगम क्या सहज है? 'आलोक अनी' में तद्भव 'अनी', तत्सम 'आलोक' के साथ अटपटा नहीं लगता लेकिन 'मनविवर में दुबकी कलौंस' क्या चीज है? फिर दो बार 'कलौंस' का प्रयोग, फिर 'कलौंस पर आंज जा' जैसा प्रयोग। उधर 'सिरोपे' के साथ 'कनकतार' का संयोग ऐसा है जैसे लुकमानअली के साथ श्री श्री विद्यानिवास मिश्र को जबरदस्ती बैठा दिया गया हो! मैं कह रहा हूं, यह सहजता नहीं है। प्रयोगशील कवि सहज भी हो, यह आवश्यक नहीं है। वह प्रचलित से भिन्न कथनी का मार्ग अपनाता है, और उसी में उसकी विशिष्टता भी है। लेकिन इस विशिष्टता से अज्ञेय की काव्यभाषा, बालकृष्ण शर्मा नवीन की काव्यभाषा की तरह ऐसे तत्सम-तद्भवों के जोड़ों से भरी पड़ी है जो सटीक नहीं हैं। 'हिय-हारिल', 'आ तू आ' और 'टेर' (हम उसे नहीं, वह हमको टेर रहा है) जैसे प्रयोगों में यह भी लगता है कि खड़ी बोली ब्रजभाषा और संस्कृत के मिश्रणों में एक मनमानापन अज्ञेय में है, (नवीन भी 'टेर' शब्द का बहुत प्रयोग करते थे)। खड़ी बोली, अज्ञेय के लिए एक 'उपलब्ध' भाषा है। वह तद्भवों के इस मिजाज से परिचित नहीं

देश की शक्ति उसकी जनसंख्या नहीं
बल्कि उसके स्वस्थ और शिक्षित नागरिक हैं

छोटे परिवार का अर्थ है

स्वस्थ बच्चे
हर एक के लिये फलने फूलने
के अधिक अवसर
सभी के लिये अच्छी शिक्षा

प्रकाशक मुद्रक हरीश भादानी के लिये राजश्री प्रिंटर्स, बीकानेर में मुद्रित